सनातन नर-नारी के प्रतीकात्मकता की द्योतक है दिनकर की 'उर्वशी'

*प्रो. हरीश अरोड़ा

* प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी जी डी ए वी कॉलेज (सांध्य), नेहरू नगर, नई दिल्ली-110065

दिनकर ने 'उर्वशी' की भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि पौराणिक पात्रों के साथ-साथ इन पात्रों के शाब्दिक अर्थ भी अपनी प्रतीकात्मकता द्वारा कथा को स्वाभाविक रूपकत्व की ओर ले जाते हैं। दिनकर के अनुसार – 'कहते हैं, निरुक्त के अनुसार, आयु का अर्थ भी मनुष्य होता है। ..... उर्वशी शब्द का कोषगत् अर्थ होगा उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना और पुरूरवा शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जो नाना प्रकार के रव करे, नाना ध्वनियों से आक्रांत हो।'[1] उनके कोषगत अर्थों के साथ ही कवि उनकी प्रतीकात्मकता पर प्रकाश डालता हुआ लिखता है – 'उर्वशी चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् तथा श्रोत की कामनाओं का प्रतीक है; पुरूरवा रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य। .... मेरी दृष्टि में पुरूरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का।'[2] इससे स्पष्ट है कि दिनकर इस काव्य को प्रतीक रूप में देखना चाहते हैं।

'उर्वशी' की इस प्रतीकात्मकता के संदर्भ में सावित्री सिन्हा को संदेह रहा है। उनके अनुसार – "उर्वशी को दिनकर यदि आरम्भ से ही मानवी बना सकते तो शायद यह प्रतीक अधिक सफल होता। उसकी भावनाओं को ज्वार उसे अनुद्विग्न देवी के पद से वंचित कर देता है और द्वंद्व से रहित होकर वह सनातन नारी का प्रतीक होते हुए भी नारी नहीं रह जाती। वह तो पुरुष की आकांक्षाओं को उभारने वाली प्रवृत्तियों की केन्द्र मात्र बनकर रह जाती है। दिनकर के अनुसार 'नारी के भीतर एक और जो नारी है जिसका संधान पुरुष तब पाता है, जब दैहिक चेतना से परे प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचता है', वह द्वंद्व से परे नहीं है, जड़ नहीं है। अच्छा होता यदि दिनकर वह द्वंद्व भी देख सके होते, तब शायद उर्वशी अपने प्रणयिनी रूप में केवल भोग्यता बन कर ही न रह जाती, उसमें एक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी हो सकती।'[3]

निश्चित रूप से 'उर्वशी' के विश्लेषण के समय सावित्री सिन्हा की दृष्टि शोधरक रही होगी लेकिन यदि उर्वशी के चरित्र का गहन अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उर्वशी को भी द्वंद्व की अनुभूति होती है। कृति के आरम्भ में ही कवि ने उर्वशी को 'उर में वास करने वाली' काम-प्रेरणा के रूप में ही चरितार्थ किया है --

जन जन के मन की मधुर वह्नि ,
प्रत्येक हृदय की उजियाली,
नारी की मैं कल्पना चरम,
नर के मन में बसने वाली।[4]

यह 'मधुर वह्नि' स्वयं में काम-प्रेरणा की इच्छा रखने वाली लपट के समान ही तो है। तीसरे अंक में जब पुरूरवा से उसका वार्तालाप होता है तब उसके भीतर का द्वंद्व स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। वहाँ वह देह के धर्म से ऊपर उठकर मन के लोक तक पहुँचने की चर्चा करती है और काम के अभिशप्त रूप की व्याख्या भी प्रस्तुत करती है। वह मानवी से जब पूर्ण मानवी अर्थात् माता बनती है तो

उसके मर्त्यलोक की मिट्टी के प्रति स्नेहित भाव उसके द्वंद्व का आंशिक प्रभाव दर्शाते हैं। उस समय महर्षि च्यवन द्वारा नारी के सम्बन्ध में कहे गए शब्द वस्तुतः उर्वशी के लिए ही थे --

नारी ही वह महासेतु,
जिस पर अदृश्य से चलकर,
नये मनुज, नव प्राण दृश्य
जग में आते रहते हैं।
नारी ही वह कोष्ठ, देव,
दानव, मनुष्य से छिपकर,
महाशून्य, चुपचाप, जहाँ
आकार ग्रहण करता है।[5]

यहाँ आकर उर्वशी की प्रतीकात्मकता काम-प्रेरणा की जीवनेच्छा से विलग होकर उदात्त मानव-धर्म की प्रतिष्ठा तक पहुँच जाती है। यह सनातन-नारी वास्तव में केवल मानवी-भूमि की नारी का रूप नहीं वरन् उज्ज्वल नैसर्गिक जीवन की साधना का रूप है। इसीलिए न तो औशीनरी के समान ईर्ष्यालु है और न सुकन्या के समान शांतमना। न ही उसमें औशीनरी के समान सर्वस्व अर्पण की भावना है और न ही सुकन्या के समान भर्ता के प्रति अभिमान। इसीलिए उर्वशी का नारी रूप चिरन्तनता का प्रतीक बन जाता है। स्वयं उर्वशी अपने सम्बन्ध में कह उठती है --

मैं देश काल से परे चिरन्तन नारी हूँ,
सरिता, समुद्र, गिरि, वन मेरे व्यवधान नहीं,
मैं भूत, भविष्यत वर्तमान की
कृत्रिम बाधा से विमुक्त--
मैं विश्वप्रिया।
तुम पंथ जोड़ते रहो,
अचानक किसी रात मैं आऊंगी
अधरों पर अपने अधरों की मदिरा उड़ेल,
मैं तुम्हें वक्ष से लगा,
युगों की संचित तपन मिटाऊंगी।[6]

वह सचमुच नारी के भीतर एक ऐसी नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है --

एक पुष्प में सभी पुष्प सब किरणें एक किरण में,
तुम सहित, एकत्रा एक नारी में सब नारी हों।[7]

इस प्रकार देखा जाए तो उर्वशी एक ओर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधर पर कामेच्छा का प्रतीक है वहीं दूसरी ओर सामाजिक संस्कारों के आलोक में 'चिरन्तन नारीत्व' का।

'पुरूरवा' की प्रतीकात्मकता के सन्दर्भ में कवि ने 'उर्वशी' की भूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि वह 'सनातन नर' का प्रतीक है। पुरूरवा के शाब्दिक अर्थ के सम्बन्ध में कवि ने उसे 'नाना प्रकार के रव करने वाला' तो कहा ही है साथ ही उसे 'रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य का प्रतीक' भी स्वीकार किया है।

दिनकर की धरणाओं और मान्यताओं के अनुसार पुरूरवा 'विश्व-पौरुष' के प्रतीक रूप में 'उर्वशी' में स्थापित है। स्वयं पुरूरवा जब अपना परिचय देता है तो वह कहता है --

यह शिला सा वक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजायें,
सूर्य के आलोक से दीपित समुन्नत भाल,
मेरे प्राण का सागर अगम, उत्ताल, उच्छल है।[8]

पुरूरवा और उर्वशी का प्रेम दैहिक प्रेम ही नहीं है अपितु वह मन के भीतर के लोक में भी संचरित होता है। विश्व प्रकाश दीक्षित के शब्दों में कहें तो – 'पुरूरवा और उर्वशी का प्रेम केवल देह की परिधितक ही सीमित नहीं रहा, वरन् देह से जन्म लेकर मन और प्राणों के गुह्य लोकों में प्रवेश करके आत्मा के रहस्याकाश में संचार करता है।''[9] यही उदात्त प्रेम पुरूरवा को देवत्व की भावना से युक्त रखता है। इसीलिए वह भौतिक सुखों से परे प्रणय की शुचिता की कामना करता है --

नहीं इतर इच्छाओं तक ही अनासक्ति सीमित है,
उसका किंचित् स्पर्श प्रणय को भी पवित्र करता है।[10]

इस प्रकार पुरूरवा आद्योपान्त सनातन-पुरुष की प्रतीकात्मकता के रूप में ही 'उर्वशी' में दृष्टिगत होता है।

'आयु' भी इस कृति में भावी मनुष्य के प्रतीक रूप में आता है। सुकन्या के स्वप्न में ऐसे ही मनुष्य का रूप

दिखाई देता है --

कोलाहल, कर्कश निनाद में भी
जो श्रवण करेगा कातर,
मौन पुकार दूर पर खड़ी करुणा की
और बिना ही कहे समझ लेगा,
आँखों-आँखों में, मूक व्यथा की कसम,
आँसुओं की निस्तब्ध् गिरा को।[11]

इसीलिए 'आयु' अपनी माता से कहता है --

माँ! हताश मत हो, भविष्य वह चाहे कहीं छिपा हो,
मैं आया हूँ अग्रदूत बन उसी स्वर्ण जीवन का।[12]

कुछ अर्थों में रंभा, सहजन्या आदि पात्र भी प्रतीक माने जा सकते हैं। इन पर आधुनिक नारी की छाया विद्यमान है। तभी तो ये गृहस्थ जीवन के स्थान पर सौन्दर्यमयी देह को ही अध्कि महत्त्व देती हैं इसीलिए मातृत्व से बचना चाहती है। इसके विपरीत सुकन्या और औशीनरी में भारतीय नारी के औदात्य की छाया घनीभूत रूप से उभरती है जो इन्हें मानवता के निकट ले जाती है। सम्पूर्ण कृति का विश्लेषण करें तो 'उर्वशी' का कथानक रूपक-काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है किन्तु इसके लिए कृति की कलात्मक अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता का सहयोग भी अपेक्षित है।

संदर्भ

1. रामधारी सिंह दिनकर, 'भूमिका', उर्वशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. **2010**, पृष्ठ **8**
2. वही, पृष्ठ **8**
3. सावित्राी सिन्हा, श्री रामधारी सिंह दिनकर और उनकी उर्वशी, अरविंद प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ **81**
4. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी, उदयाचल, पटना, संस्करण **1971**, पृष्ठ **96**
5. वही, पृष्ठ **113**
6. वही, पृष्ठ **98**
7. वही, पृष्ठ **104**
8. वही, पृष्ठ **60**
9. विश्व प्रकाश दीक्षित, श्री रामधारी सिंह दिनकर और उनकी उर्वशी, अरविंद प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ **84**
10. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी, उदयाचल, पटना, संस्करण **1971**, पृष्ठ **54**
11. वही, पृष्ठ **73**
12. वही, पृष्ठ **74**

संस्कृति के चार अध्याय: एक सांस्कृतिक अवलोकन

* चंदन कुमार

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

शोध सार

रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में भारतीय संस्कृतिक के इतिहास को चार भागों में विभाजित कर लिखा है। इस किताब के माध्यम से वे यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारत का आधुनिक संस्कृति प्राचीन संस्कृति से किन-किन अर्थो में भिन्न है एवं इस भिन्नता का कारण क्या है? दिनकर जी का विश्वास है कि हमारी संस्कृति चार बड़ी क्रांतियों से गुजरी हैं तथा भारतीय संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रान्तियों का इतिहास है, जिसे 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक के माध्यम से व्यक्त करने का सफल प्रयास किए हैं।

पहली क्रान्ति तब हुई, जब आर्य भारत आए यानी आर्यो का गैर-आर्यो जो कि यहाँ के मूल निवासी थे, उनसे जब सम्पर्क हुआ; तात्पर्य यह है कि आर्य संस्कृति का गैर-आर्य संस्कृति के संक्रमण से जिस संस्कृति का विकास हुआ वही आर्यों अथवा हिन्दुओं का बुनियादी समाज और संस्कृति हुआ। संस्कृति की दूसरी क्रान्ति तब हुई, जब वर्धमान महावीर एवं गौतम बुद्ध ने इस हिंदु धर्म के स्थापित मान्यताओं, कुरीतियों, आडम्बरों तथा धार्मिक शोषण के खिलाफ आंदोलन किए तथा वेद-उपनिषद की चिन्तन धारा को अपनी मनोवांक्षित दिशा की ओर मोड़े। इस क्रान्ति ने तो भारतीय संस्कृति की अभूतपूर्व सेवा की, लेकिन अन्त में जिस आडंबर के विरोध में यह धर्म आया उसी आडंबर में भारतीय समाज और संस्कृति को फिर से धसा दिया मसलन मूर्तिपूजा के विरोध में उपजा क्रांति गौतम बुद्ध को ही भगवान मानकर उनकी मूर्ति पूजने लगा।.

तीसरी क्रान्ति उस समय हुई जब इस्लाम धर्म को मानने वाले आक्रांता भारत पहुँचे और देश के मौजूदा संस्कृति के साथ उसका सम्पर्क हुआ। दोनों के मिलन से जिस संस्कृति का विकास हुआ उसे ही सामासिक संस्कृति या गंगा-जमुनी तहज़ीब कहा गया। चौथी और अंतिम क्रान्ति आधुनिक समय में हुई जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिन्दुत्व एवं इस्लाम दोनों ने नव-जीवन को संभव किया। इस पुस्तक में इन्हीं चार क्रांतियों का संक्षिप्त इतिहास है। संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक के लिए दिनकर को 1959 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बीज शब्द: उद्भासित, व्यंजना, मनोवांछित, शून्यवाद, संवितरित, अवगाहन, कैवल्य, नवजागरण, दृश्यपटल

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिंदी साहित्य के महान कवि, निबंधकार, पत्रकार एवं स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्हें 'वीर रस' के महान कवियों में शुमार किया जाता है। आजादी से पहले लिखी गई उनकी ओजपूर्ण देशभक्ति की कविताओं ने उन्हें 'राष्ट्रीय कवि' की पहचान दिलाई। समय के साथ उन्हें 'राष्ट्रकवि' होने का भी गौरव प्राप्त हुआ, उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' विचार एवं लेखन की दुनिया में एक असाधारण घटना मानी जाती है। आजादी के 'अमृत महोत्सव' पर हम ऐसी कृतियों को रेखांकित करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं,

जिन्होंने भारतीयता को सही मायने में परिभाषित करने तथा उसके माध्यम से एक बौद्धिक विमर्श का मार्ग प्रशस्त किया है। दिनकर जी की यह किताब जो 1956 में प्रकाशित हुई, जिसे निश्चित ही एक अमूल्य धरोहर की तरह देखी जानी चाहिए। इस किताब को यह भी गौरव हासिल है कि इसकी भूमिका भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। दिनकर जी का मानना है कि भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में आर्य और द्रविड़ भाषा परिवार के लोगों के साथ-साथ मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति और आधुनिक अंग्रेज़ी संस्कृति का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

आर्य, द्रविड़, मुस्लिम एवं अंग्रेज़ी प्रभाव को दिनकर जी भारतीय संस्कृति के चार अध्याय मानते हैं। उनकी यह मान्यता नेहरू जी की 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' अथवा 'भारत की खोज' से प्रभावित मानी जाती है। इस लेख में भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की गई है। ये विशेषतायें उनकी उर्वशी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी तथा संस्कृति के चार अध्याय के अध्ययन के आधार पर विकसित की गई है। दिनकर जी अपने लेखकीय निवेदन में भारत की विविधवर्णी संस्कृति की एकता की बात करते हुए लिखते हैं कि- 'पुस्तक लिखते-लिखते, इस विषय में मेरी आस्था और भी बढ़ गई कि भारत की संस्कृति, आरंभ से ही सामासिक रही है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, देश में जहां भी जो हिंदू बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामासिक संस्कृति की विशेषता है। तब हिंदू और मुसलमान हैं, जो देखने में अब भी दो लगते हैं, किंतु उनके बीच भी सांस्कृतिक एकता विद्यमान है, जो उनकी भिन्नता को कम करती है।' सांस्कृतिक भिन्नता का यही मूल प्रश्न लिए रचनाकार भारत को एक राष्ट्र एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखते हुए भारतीय संस्कृति को परखने की कोशिश किया है।

इस पुस्तक का महत्व इस अर्थ में भी है कि सात दशक से अधिक हो जाने के बाद भी इससे संबंधित पक्ष-विपक्ष तथा सहमती-असहमती के अनेकों बिंदु आज भी विमर्श के विषय बने हुए हैं। लेकिन मज़े की बात यह है कि रचनाकार रोचक ऐतिहासिक तथ्य स्थापित करता तो है लेकिन वह इसे इतिहास नहीं बल्कि साहित्य मानता है, स्वम् लेखन ने स्वीकारा है कि "एक समय मैं इतिहास का विद्यार्थी अवश्य था, किंतु जब से कविता और निबंध में लगा, तब से इतिहास के साथ मेरा संपर्क एक प्रकार से छूट सा गया। तब 1950 ई. में मैं छात्रों को साहित्य पढ़ाने के लिए कालेज भेजा गया। वहाँ साहित्य की सामासिक पृष्ठभूमि समझने के क्रम में मुझे इतिहास की पुस्तकें फिर से उलटनी पड़ी और धीरे-धीरे मैं फिर से इतिहास की गहराई में उतरने लगा। मेरी पहली जिज्ञासा यह थी कि हमारा आधुनिक साहित्य हमारे प्राचीन साहित्य से किन-किन बातों में भिन्न है और इस भिन्नता का कारण क्या है? कारण की खोज करता हुआ मैं ढूंढ-ढूंढकर 19 वीं सदी के सांस्कृतिक जागरण का हाल पढ़ने लगा फिर जिज्ञासा कुछ और विस्तृत हो गई और मन ने जानना चाहा कि भारतीय संस्कृति का संपूर्ण इतिहास कैसा रहा है? लगभग 2 वर्षों के अध्ययन के पश्चात मेरे सामने यह सत्य उद्भासित हो उठा कि भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रांतियां हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है।" लगभग आठ सौ पृष्ठों के इस ग्रंथ को चार बड़ी सांस्कृतिक क्रांतियों में विभाजित किया गया है। लेखक का मानना है कि ये चार ऐसे निर्णायक चरण हैं जिनके माध्यम से आज की हमारी संस्कृति के इतिहास ने अपना अस्तित्व पाया है।

पहले चरण में वे आर्यो के भारतवर्ष में आने तथा उनके आर्येतर जातियों से संपर्क और नए समाज एवं संस्कृति निर्माण के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि इस बुनियादी भारतीय संस्कृति के लगभग आधे उपकरण आर्यों के दिए हुए हैं तथा दूसरा आधा आर्येतर जातियों का अंशदान है। दूसरे चरण का विचार रचनाकार ने तब माना है जब महावीर और गौतम बुद्ध ने स्थापित सनातन धर्म के विरुद्ध विद्रोह किया एवं उपनिषदों की चिंतन धारा को खींचकर वे अपने मनोवांछित दिशा की ओर ले गए। महावीर तथा गौतम बुद्ध के प्रभावों से भारत के सांस्कृतिक दृश्यपटल को वे एक बड़ी निर्मिति के रूप में देखते हैं जिसका प्रभाव आज तक विधमान है।

तीसरे चरण का कारण वे तब मानते हैं, जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुंचा तथा इस देश में हिंदुत्व के साथ उसका संपर्क हुआ। चौथा चरण उस दौर को रेखांकित करते हुए अस्तित्व पाती है जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ। इन्हीं चार क्रांतियों के प्रभाव के विश्लेषण और इतिहास के अध्ययन का ही निचोड़ है यह पुस्तक.! इस अर्थ में यह पुस्तक भारतीयता को अपनाकर, आपसी सामंजस्य तथा मैत्रीपूर्ण रिश्तों के

बीच सांस्कृतिक आवागमन की राह पर चलता हुआ देखती है जिसमें कई विचार मिलकर विविध रूप में हमारी राष्ट्रीयता को प्रतिबिम्बित करते हैं।

चार अध्यायों में संवितरित यह कृति भारत की ऐतिहासिक बहुलता के पक्ष को प्रभावी ढंग से रखती है। पहले ही अध्याय में 'भारतीय जनता की रचना और हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव' के तहत कई प्रकरणों में बंटा विमर्श वर्ण-व्यवस्था' आर्य-द्रविड़ संबंध, जाति-भेद, रामकथा की व्यापकता, कृष्ण नाम की प्राचीनता, वैष्णव धर्म आदि के साथ ही ऋग्वेद के रचनाकाल तक पसरी हुई है। इसी तरह, दूसरे अध्याय में हिंदुत्व से विद्रोह के तहत जैन तथा बौद्ध मतों के सिद्धांत एवं उनका वैदिक धर्म पर प्रभाव आदि को तटस्थता के साथ परखने की कोशिश की गई है। इस संदर्भ में सांस्कृतिक उपनिवेशों की स्थापना, तंत्र-साधना, गीता आदि की चर्चा के साथ शैव धर्म, योग, पुराण, शून्यवाद तथा कैवल्य तक को विश्लेषित किया गया है। यह कहा जा सकता है कि अपने विशद अध्ययन के तहत और ढेरों विद्वानों की पुस्तकों, ग्रंथों से संदर्भ चुनते हुए दिनकर जी भारतीय दृष्टि का ऐसा विस्तृत फलक खींचते हैं, जिसके अवगाहन के लिए वैचारिक दृष्टि से उदार होना एक जरूरी शर्त की तरह इस पुस्तक पर लागू है।

तीसरा अध्याय 'हिंदू संस्कृति और इस्लाम' के तहत मुस्लिम आक्रमण एवं हिंदू समाज की व्याख्या के साथ ही हिंदू मुस्लिम संबंध की अनोखी व्यंजना को चरितार्थ करता है। यह अध्याय भक्ति आंदोलन, सिख धर्म के विश्लेषण के साथ ही कला एवं शिल्प पर इस्लाम के प्रभाव को रचनात्मक ढंग से रेखांकित करता है। अंतिम अध्याय अंग्रेजों के आगमन, मिशनरियों का प्रभाव, कंपनी सरकार की शिक्षा नीति आदि के अलावा ब्राह्मण समाज एवं भारतीय नवजागरण काल को शानदार ढंग से व्याख्यायित किया है। कुल मिलाकर 'संस्कृति के चार अध्याय' एक ऐसी संपूर्ण सांस्कृतिक डायरी पढ़ने का सुख प्रदान करती है, जो इतिहास के गलियारे से गुजरकर साहित्य की भाषा में अपना बौद्धिक प्रभाव छोड़ती है।

भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य पर विद्वान मैक्स मूलर के व्याख्यानों का संकलन इंग्लैंड में 1882 ई. में प्रकाशित हुआ था। इन्हीं व्याख्यानों का हिंदी अनुवाद 'भारत हमें क्या सिखा सकता है?' जो बाद में सुरेश मिश्र के अनुवाद में प्रकाशित हुआ। पुस्तक में मैक्स मूलर भारत की भौगोलिक संपन्नता, चारित्रिक जटिलता, सांस्कृतिक विविधता तथा धार्मिकता पर अपने अध्ययन और शोध को व्यापकता प्रदान करते हैं। मैक्स मुलर इसबात पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि भारत में भाषाशास्त्रियों, इतिहासकारों तथा समाज विज्ञानियों के लिए इतना कुछ है, जिस पर अभी भी विस्तृत अध्ययन की जरूरत महसूस होती है।

सात व्याख्यानों का यह संग्रह संस्कृत साहित्य की मानवीय रुचि, वैदिक देवता, वेदों का धर्म, वैदिक साहित्य, वेद एवं वेदांत समेत हिंदूओं के समावेशी चरित्र को इतिहास तथा संस्कृति के फलक पर उद्घाटित करता है। वह यह भी मानते हैं कि भारत के गौरवशाली इतिहास में साहित्य एवं संस्कृत भाषा की ऐसी अनेक उपलब्धियां शामिल हैं, जो गंगा के प्राचीन तटों पर स्थित इस देश को समग्रता में समझने के लिए व्यापक दृष्टि देती हैं। इतना सब ऐतिहासिक विकासक्रम लिखने के बाद भी लेखन इसे साहित्य होने पर ही जोर देते हुए कहता है- "मैंने पहले भी कहा था और आज भी दुहराता हूँ कि यह महज साहित्य और दर्शन का है। इतिहास की हैसियत यहाँ किरायेदार की है। किरायेदार का आदर तो मैं करता हूँ, किंतु महल पर कब्जा देने की बात मैं नहीं सोच सकता। मैं कोई पेशेवर इतिहासकार नहीं हूँ। इतिहास की ओर मैं शौक से गया हूँ और शौक से ही उसकी सामग्रियों का उपयोग भी करता हूँ।"

यह पुस्तक कई संस्करणों को पार कर अपनी पूर्णता हासिल की है तथा हर संस्करण में कुछ न कुछ जुड़कर यह और धनी हुआ है। पहले संस्करण के अपेक्षा तृतीय संस्करण में जो नई बातें जुड़ी है अगर दिनकर के ही शब्दों में कहें तो वह यह है कि पहले संस्करण में आर्य-द्रविड़ समस्या का वृतांत बहुत ही संक्षिप्त था। इस बार वह अधिक विस्तृत और अधिक पूर्ण मिलेगा। इसी प्रकार 'आर्य और आर्योत्तर संस्कृतियों का मिलन' नामक प्रकरण भी फिर से लिखा गया है। स्थापना तो इस प्रकरण की अब भी वही है जो पहले थी, किंतु अनेक नए प्रमाणों और नई युक्तियों के आ जाने से यह स्थापना अब अधिक प्रभावशाली हो गई है। बौद्ध धर्म के प्रसंग में 'बौद्ध साधना पर शाक्त प्रभाव' भी बिल्कुल नया अध्याय है। पहले संस्करणों में तंत्र-साधना का वृतांत था ही नहीं। इस बार भी वह संक्षेप में ही दिया गया है लेकिन उसने से भी पाठक को यह समझने में आसानी होगी कि धर्म और

काम को समन्वित करने में मध्यकालीन साधकों को उतनी ही कठिनाई हुई थी और बाद के साहित्य और संस्कृति पर इस प्रयोग का क्या प्रभाव पड़ा।

इस्लाम-खण्ड तो पूरा का पूरा दोबारा लिखा गया है। इस क्रम में बहुत से सामग्रियाँ एक जगह से उठा दूसरी जगह डाली गई हैं और अनेक नई युक्तियों, नई शंकाओं, नए अनुमानों और नए प्रसंगों का समावेश यथा स्थान किया गया है। बीसवीं सदी में आकर भारत का जो बंटवारा हुआ, उसका बीज मुगल-काल में ही शेख अहमद 'सरहिंदी' के प्रचार में था। इस उद्भावना को मैंने विशेष रूप से रेखांकित किया है आशा है भारत की संप्रदायिक समस्या को समझने में पाठकों को उस से सहायता मिलेगी।

सबसे कम परिवर्तन ग्रंथ के चौथे अध्याय में किया गया है। कंपनी सरकार की भाषा-नीति के बारे में जो दो-चार बातें कही गई हैं, इजाफा केवल वे ही हैं। बाकी सब का सब वही है, जो पहले के संस्करणों में था, यद्यपि उपशीर्षक लगा देने से यह अंश भी अधिक आकर्षक और कम बोझिल हो गया है। हाँ, ग्रंथ का उपसंहार पहले नहीं लिखा गया था। वह इसी संस्करण में सम्मिलित किया गया है।

दिनकर का कहना है कि यह संभव नहीं है कि संसार में जो बड़ी बड़ी ताकतें काम कर रही हैं उन्हें हम पूरी तरह समझ सके, लेकिन इतना तो हमें समझना ही चाहिए कि भारत क्या है? और कैसे इस राष्ट्र ने अपने सामाजिक व्यक्तित्व का विकास किया? उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू कौन से हैं? और उसकी सुदृढ़ एकता कहाँ स्थित है? भारत में बसने वाली कोई भी जाती यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन और विचारों पर उसी का एकाधिकार है भारत आज जो कुछ है, उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है। यदि हम बुनियादी बात को नहीं समझ पाते हैं, तो फिर हम भारत को ही समझने में असमर्थ रहेंगे और यदि भारत को नहीं समझ सके, तो हमारे भाव विचार और काम सब के सब अधूरे रह जाएंगे और हम देश की कोई भी सेवा नहीं कर सकेंगे जो ठोस और प्रभावपूर्ण हो.!

संस्कृति के चार अध्याय के इतर अगर हम राष्ट्रकवि दिनकर की लेखनी की बात करें तो उनकी कविताएं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है वे भारतीयों में गुलामी के प्रति आगाह करते हैं तथा स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने पर विशेष बल देते हैं। उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण एवं संघर्ष के आह्वान का जीता-जागता दस्तावेज़ है। उनके यहाँ राष्ट्रीय चेतना कई स्तरों पर व्यक्त हुई है। रेणुका, हुंकार, इतिहास के आँसू जैसी कविताओं में वे विद्रोह तथा विप्लव के स्वर को उभारा है। इनमें उत्साह, कर्म, पौरुष और उत्तेजना का संचार है। यह सब तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति के लिये अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ। दिनकर जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना एक अन्य स्तर पर भी दिखाई देती है, जहाँ वे शोषण का प्रतिकार करने का समर्थन करते हुए कहते हैं कि यदि कोई हमारे साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करे तो नैतिकता का तकाजा युद्ध करना है। वे कहते हैं- *छीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग-तप से काम ले यह पाप है। पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।*

दिनकर (1908-1974) आजादी के पहले और बाद दोनों समय के कवि हैं तो दोनों समय के शोषक-वर्ग तथा उसके शोषण का खुलकर विरोध किए हैं। किसी भी स्तर के शोषण का वे विरोध करते हैं। दिनकर, लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे। वे सत्ता के निरंकुशता को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि- *सदियों की ठंढी-बुझी राख सुगबुगा उठी, मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है; दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो, सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।*

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

- ✓ भारतीय साहित्य संग्रह, मूल (पीएचपी) से 13 जून 2010 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि 12 दिसंबर 2008
- ✓ अकादमी पुरस्कार, साहित्य अकादमी। मूल से 15 सितंबर 2016 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि 11 सितंबर 2016
- ✓ "संस्कृति के चार अध्याय" 'रामधारी सिंह दिनकर' (अंग्रेज़ी में), इंडिया पिक्स.कॉम, मूल (एचटीएम) से 7 अगस्त 2016 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि 12 दिसंबर 2008
- ✓ 'संस्कृति के चार अध्याय', भारतीय साहित्य संग्रह, मूल (पीएचपी) से 13 जून 2010 को पुरालेखित। अभिगमन तिथि 12 दिसंबर 2008

- ✓ भारत हमें क्या सिखा सकता है? मैक्स मूलर, अनुवाद: सुरेश मिश्र, संस्कृति विमर्श/व्याख्यान, पहला संस्करण, 2019।राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
- ✓ कुरुक्षेत्र(दूसरा सर्ग), रामधारी सिंह 'दिनकर' राजपाल प्रकाशन, पहला संस्करण, 1964
- ✓ डॉ. अमित कुमार, भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता (हिंदी) ब्रांड बिहार डॉट कॉम। अभिगमन तिथि: 23 सितम्बर, 2013
- ✓ संस्कृति के चार अध्याय (हिंदी) भारतीय साहित्य संग्रह, अभिगमन तिथि: 23 सितम्बर, 2013
- ✓ तमिल और संस्कृत भाषा का मेलजोल(हिंदी) 'मेरी छोटी सी दुनिया' (पुस्तक- संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ-37)। अभिगमन 23 सितम्बर, 2013

'कुरुक्षेत्र' में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रीयता की अनुगूँज

* विजय ज्योति

* शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय ,पटना

शोध सार

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की अद्वितीय रचना है 'कुरुक्षेत्र'। 'कुरुक्षेत्र' का मूल भाव युद्ध की समस्या है।दिनकर 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से कुरुक्षेत्र में हुए युद्ध को दोहरा नहीं रहें बल्कि उसका आश्रय लेकर वर्त्तमान की परिस्थितियों का आकलन कर रहें हैं।मूलतः यह काव्य रचना द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह नरसंहार एवं त्रासदी की संवेदनात्मक परिणति है। यह देश की आजादी ,अधिकार,सुख-शांति के लिए प्रयासरत कवि की आंतरिक पीड़ा की काव्यात्मक प्रस्तुति है।'कुरुक्षेत्र' में औपनिवेशिक शासन की निष्ठुरता, उत्कट स्वार्थ लिप्सा, हिंसा परायणता आदि कुप्रवृतियों से मानवता के ह्रास को दिनकर ने काव्यरूप दिया है।'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्रवाद का स्वर सिर्फ क्रांति के सर्जन का ही नहीं है अपितु साम्यवादी समाज के निर्माण से भी अभिप्रेरित है।भले ही 'कुरुक्षेत्र' की रचना राष्ट्रकवि दिनकर ने युग के प्रभाव से युद्ध की समस्या पर की हो पर कुरुक्षेत्र का मूल स्वर राष्ट्रवादी एवं भाव मानवतावादी है। दिनकर साम्यवाद एवं मैत्री की भावना को देश के विकास और स्थायी शांति के लिए आवश्यक मानते हैं।कुरुक्षेत्र में औपनिवेशिक शासन से चोट खाए हुए राष्ट्र के क्रोध का उग्र स्वर है तो साथ ही कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण भी एवं नये भारत के निर्माण का उज्जवल स्वप्न भी।

बीज शब्द: कुरुक्षेत्र, औपनिवेशिक,राष्ट्रवाद,साम्यवाद ,देशप्रेम

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की अद्वितीय रचना है 'कुरुक्षेत्र'।'कुरुक्षेत्र' अन्य प्रासंगिक एवं सशक्त रचनाओं की तरह अपने काल एवं परिवेश से अलग नहीं है, इसमें भी हमें अपने युग परिवेश की अनुगूँज दृष्टिगत होती हैं। राष्ट्रकवि दिनकर ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लिखना शुरू किया था।जब देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, चारों ओर देश को स्वतंत्र कराने के प्रयास चरम पर थे।अलग-अलग विचारधारा के लोग विभिन्न रास्तों से सिर्फ एक ही दिशा में प्रयासरत थे और चारों ओर की परिस्थितियाँ उनपर जबर्दस्त प्रभाव डाल रही थी।समय की मांग के अनुसार रचना करना उनका युगधर्म था।'हुंकार' काव्य संग्रह के आमुख की ये पक्तियां इस बात को स्पष्ट करती है –

'वर्त्तमान की जय' अभीत हो खुलकर मन की पीर बजे ,
एक राग मेरा भी रण में, बंदी की जंजीर बजे।
नई किरण की सखी; बाँसुरी के छिद्रों से लूक उठे,
साँस-साँस पर ,खड्ग-धार पर नाच हृदय की हूक उठे।[1]

'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ।सन् 1941 से 'कुरुक्षेत्र' का लिखा जाना आरंभ हो गया था एवं सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो चुका था।भयावह नरसंहार ने राष्ट्रकवि दिनकर के कवि मन को उद्वेलित कर दिया।राष्ट्रकवि दिनकर इस बात का उल्लेख करते 'कुरुक्षेत्र' के पंचम सर्ग के आरंभ में कहते हैं –

शारदे ! विकल संक्रांति – काल का नर मैं,
कलिकाल-भाल पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं,
संतप्त विश्व के लिए खोजते छाया.
आशा में था इतिहास-लोक तक आया।

पर हाय , यहाँ भी धधक रहा अंबर है,
उड़ रही पवन में दाहक, लोल लहर है....[2]

उक्त पंक्तियों में राष्ट्रकवि दिनकर पाठक को यह स्पष्ट कर देते हैं कि विश्व में जो स्थिति है उस स्थिति की समस्या का समाधान पाने वह संक्रांति काल के कवि इतिहास के पन्नों तक जाते हैं पर वहाँ भी वही हाल है, वही आग की लपटें उठ रही हैं ...।उन्होंने काव्य संग्रह 'रश्मिलोक' की भूमिका में लिखा है "कुरुक्षेत्र काव्य का आरंभ 1941ईस्वी में सीतामढ़ी में हुआ था जहाँ मैं सब रजिस्टार था और पूर्ण वह सन् 1946 ईस्वी में पटने में हुआ , जहाँ मैं युद्ध प्रचार विभाग में काम कर रहा था ।"[3] युद्ध प्रचार विभाग में कार्य करते हुए दिनकर युद्ध की विभीषिका से सीधे जुड़ गए थे ।किस तरह कुछ देशों की साम्राज्यवादी नीतियों का दंश पूरी मानवजाति झेलती है।वैश्वक स्तर पर देशों में साम्राज्य विस्तार की होड़ मची थी विकसित देश अपने उपनिवेश की स्थापना के लिए देशों पर अधिकार कर वहाँ की सम्पदा को लुट रहे थे एवं जनता का दोहन कर रहें थे ।'कुरुक्षेत्र' में औपनिवेशिक शासन की निष्ठुरता, उत्कट स्वार्थ लिप्सा, हिंसा परायणता आदि कुप्रवृतियों से मानवता के ह्रास को दिनकर ने बखूबी काव्यरूप दिया है।

'कुरुक्षेत्र' द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह नरसंहार एवं त्रासदी की संवेदनात्मक परिणति है।यह देश की आजादी,अधिकार,सुख-शांति के लिए प्रयासरत कवि की आंतरिक पीड़ा की काव्यात्मक प्रस्तुति है।'कुरुक्षेत्र' एक आततायी शासन के खिलाफ धर्म एवं अधिकार का युद्ध है।दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' के निवेदन में कहा है - "'कुरुक्षेत्र' की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और ना महाभारत को दुहराना मेरा उद्देश्य था।मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था ।"[4] दिनकर प्राचीन काल में हुए 'कुरुक्षेत्र' के युद्ध को दोहरा नहीं रहें बल्कि उसका आश्रय लेकर वर्त्तमान की परिस्थितियों का आकलन कर रहें हैं।

महाभारत नहीं था द्वंद्व केवल दो घरों का ,
अनल का पुंज था इसमें भरा अगणित नरों का।
न केवल यह कुफल कुरुवंश के संघर्ष का था ।
विकट विस्फोट यह सम्पूर्ण भारतवर्ष का था।[5]

दिनकर स्पष्ट कर देते हैं कि यह महाभारत का युद्ध कौरव एवं पांडव दो घरों का द्वंद्व नहीं है।बल्कि यह विकट विस्फोट सम्पूर्ण भारतवर्ष का है।कौरव एवं पांडव भाई थे सत्ता पर दोनों का समान अधिकार था।योग्य होते हुए पांडव को वह अधिकार नहीं मिला।अधिकार तो दूर की बात हो गई उन्हें अपने राज्य से निष्कासन झेलना पड़ा।वन – वन भटकना पड़ा जिस सुख –सुविधा के वह अधिकारी थे उससे उनको वंचित किया गया फिर भी पांडव अपने भाइयों से युद्ध को तैयार नहीं थे पर अत्याचार जब अपनी सीमा से आगे बढ़ जाता है और युद्ध ही आखिरी विकल्प बन जाता है तब पांडवों ने धनुष – बाण उठाए।उसी तरह भारतीय जनमानस अंग्रेजों के अत्याचार से विकल हो चुका था।शांति से अपने अधिकारों के मांग के सभी प्रयास असफल हो रहें थे अब उनके पास भी स्वतंत्रता आंदोलन के सिवा कोई विकल्प नहीं बचा है।

"सहज ही चाहता नहीं कोई लड़ना किसी से;
किसी को मारना अथवा स्वयं मरना किसी से;
नहीं दु:शांति को भी तोड़ना नर चाहता है;
जहाँ तक हो सके, निज शांति प्रेम निबाहता है ।[6]

दिनकर जनता की मन:स्थिति को निरुपित कर रहें हैं दु:शांति को भी नर तोड़ना नहीं चाहता है जहाँ तक हो सकें शांति का प्रयास करता है।भारतीय संस्कृति क्षमा, दया,तप त्याग,प्रेम आदि मानवतावादी मूल्यों पर आधारित है पर यह सभी मानवीय मुल्य मनुज को प्रिय होते हैं, दनुजों के लिए ये मुल्य निरर्थक हैं।

"मगर, यह शांतिप्रियता रोकती केवल मनुज को,
नहीं वह रोक पाती है दुराचारी दनुज को।
दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी पहचानता है ?
विनय की नीति कायर की सदा वह मानता है ।[7]

अंग्रेजी शासन एक दमनात्मक शासन व्यवस्था थी।जिसने भारतीयों को पूरी तरह गुलाम बना दिया।उनका जीवन दिनों-दिन बद से बद्त्तर होता चला गया।'कुरुक्षेत्र' के तृतीय सर्ग में दिनकर जी की पंक्तियाँ अंग्रेजों की उपनिवेशवादी नीतियों को प्रस्तुत करती है ।

सुख –समृध्दि का विपुल कोष
संचित कर कल ,बल,छल से,
किसी क्षुधित का ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से,
सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहती कुछ मत बोलो,
शांति-सुधा बह रही, न इसमें
गरल क्रांति का घोलो ।[8]

प्रस्तुत पंक्तियाँ एक औपनिवेशिक रूप से गुलाम देश की जनता की मन:स्थिति एवं परिस्थितियों का सटीक वर्णन करती है –

हिलो – डुलो मत, हृदय – रक्त
अपना मुझको पीने दो,
अचल रहे साम्राज्य शांति का
जियो और जीने दो।[9]

यह 'अचल' साम्राज्य ब्रिटिश साम्राज्य है जो 20 वीं सदी के प्रारंभ में ही विश्व का सबसे बड़ा साम्राज्य बन चूका था।कर कल, बल,छल से औपनिवेशिक देश अपना साम्राज्य स्थापित करता है वहाँ की धन सम्पदा को लुटता है ,जनता का शोषण करता है (हृदय-रक्त अपना मुझको पीने दो)।आगे दिनकर कहते हैं -

जहाँ पालते हों अनीति-पध्दति
को सत्ताधारी,
जहाँ सूत्रधर हों समाज के
अन्यायी, अविचारी;
नीतियुक्त प्रस्ताव संधि के
जहाँ न आदर पायें;
जहाँ सत्य कहनेवालों के
सीस उतारें जायें; [10]

औपनिवेशिक शासन में सत्ता में वैसे लोग शासक होते हैं जिन्हें मानवतावादी मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं होता है।नीतियुक्त प्रस्ताव देने वाले आदर नहीं पाते हैं और सत्य कहने वाले लोगों के शीश काट दिए जाते हैं।

जहाँ खड्ग-बल एकमात्र
आधार बने शासन का;
दबे क्रोध से भभक रहा हो
हृदय जहाँ जन-जन का;
सहते-सहते अनय जहाँ
मर रहा मनुज का मन हो;
समझ कापुरुष अपने को
धिक्कार रहा जन-जन हों; [11]

ब्रिटिश साम्राज्य के शासन की व्याख्या उपरोक्त पंक्तियों में राष्ट्रकवि दिनकर ने की है।यह शासन व्यवस्था अनीति पर टिकी हुई है, शासक अन्यायी, अविचारी है नीतियुक्त प्रस्ताव का यहाँ कोई मूल्य नही है पूरी व्यवस्था खड्ग-बल पर टिकी है।अंग्रेजों का अत्याचार सहते-सहते उनके अंदर का साहस ख़त्म हो रहा है अपने आप को कायर मान कर धिक्कार रहा है।दिनकर आगे कहते हैं अंग्रेजों ने हम भारतीयों के शोषण के नित नये-नये तरीकें ला रहीं है।जिस दिन हम भारतीयों ने संयम छोड़ा उस दिन उन अत्याचारियों के अत्याचार का अंत हो जाएगा।

कभी नये शोषण से, कभी
उपेक्षा , कभी दमन से।
अपमानों से कभी, कभी
शर-वेधक व्यंग्य-वचन से।
दबे हुए आवेग वहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़, काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें।[12]

राष्ट्रकवि दिनकर साहस विहीन भारतीय युवा मन को अपने काव्य के माध्यम से जाग्रत करने का भी प्रयास करते हैं।भारतीय मानवीय मूल्य क्षमा त्याग ,दया ,बलिदान की है पर कोई बाहरी शत्रु जब रोग की तरह इसका नाश करने पर तुला है तो उसका इलाज भी करना आवश्यक हो जाता है।कुरुक्षेत्र की प्रस्तुत पंक्तियाँ अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरोध के स्वर स्पष्ट हैं –

व्यक्ति का धर्म, तप, करुणा, क्षमा,
व्यक्ति की शोभा विनय भी, त्याग भी
किन्तु, प्रश्न उठता जब समुदाय का
भुलना पड़ता हमें तप त्याग भी।

आगे कहते हैं -

औ' समर तो और भी अपवाद है,
चाहता कोई नहीं इसको, मगर
जूझना पड़ता सभी को, शत्रु जब
आ गया हो द्वार पर ललकारता।
छीनता हो स्वत्व कोई , और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।[13]

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय इसी शर्त पर अंग्रेजों का साथ दे रही थी कि युद्ध के बाद उन्हें उनकी आजादी वापस मिल जाएगी।कुरुक्षेत्र' में दिनकर मानते हैं कि 'अहिंसा अगर परम धर्म है, तो हिंसा को आपद धर्म मानना ही पड़ेगा ।' कुरुक्षेत्र में महात्मा गाँधी का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर कर रहें हैं तो ऐसे युवा जो अहिंसा के सिध्दांत को नहीं मानते उनका प्रतिनिधित्व भीष्म रहें हैं।युधिष्ठिर कहते हैं –

जानता हुं, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु,

लोहू – सनी जीत मुझे दिखती अशुद्ध है
ध्वंसजन्य सुख याकि साश्रु दुःख शांतिजन्य,
ज्ञात नहीं, कौन बात नीति के विरुद्ध है।[14]

गाँधी जी हिंसा के बिल्कुल खिलाफ थे पर प्रथम विश्वयुद्ध एवं द्वितीय विश्वयुद्ध दोनों में उन्होंने भारतीय जनता से अंग्रेजों का साथ देने का आवाहन किया।स्वतंत्रता प्राप्ति के हिंसात्मक आन्दोलन के वो पूर्णरूप से खिलाफ थे।उनका कहना था कि हिंसात्मक संघर्ष में हमनें अपने लाखों बंधू-बांधवों को खोया हैं। भीष्म कह रहें हैं -

समर निन्द्य है धर्मराज, पर,
कहो, शांति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी
बनी हुई सरला है? [15]

'कुरुक्षेत्र' का मूल भाव युद्ध की समस्या है।युद्ध के कारणों को उल्लेखित करते हुए दिनकर कहते हैं -

"युगों से विश्व में विष-वायु बहती आ रही थी,
धरित्री मौन हो, दावाग्नि सहती आ रही थी;
परस्पर वैर-शोधन के लिए तैयार थे सब,
समर का खोजते कोई बड़ा आधार थे सब।
"कहीं था जल रहा कोई किसी की शूरता से।
कहीं था क्षोभ में कोई किसी की क्रूरता से।
कहीं उत्कर्ष ही नृप का नृपों को सालता था।
कहीं प्रतिशोध का कोई भुजंगम पालता था।"[16]

जब तक देशों में आपसी साम्राज्य बढ़ाने की होड़ मची रहेगी ,एक देश – दुसरे देश की उन्नति से जलता रहेगा।कहीं प्रतिशोध,कहीं क्रूरता, कहीं शूरता युद्ध का कारण बनता रहेगा है।युद्ध राष्ट्रीयता की विरोधी है एवं इसके परिणाम राष्ट्र के लिए अहितकर है।विकास के लिए हानिकारक है।राष्ट्र का हित दिनकर के काव्य में सर्वोपरी है।

दिनकर राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी कवि है उनकी राष्ट्रीय चेतना उनके काव्य में अंध देशभक्ति बनकर नहीं आयी है बल्कि वह एक उदात्त राष्ट्रीयता है। जो वैचारिक रूप से प्रौढ़ है।दिनकर राष्ट्रहित के हर पहलू पर विचार करते हैं।'कुरुक्षेत्र' में देश में स्थायी शांति का साम्राज्य कैसे स्थापित हो ? ताकि नया भारत बने तो उसमें शांति स्थायी हो।कुरुक्षेत्र के तृतीय सर्ग की प्रस्तुत पंक्तियाँ दिनकर की इसी राष्ट्र हित की भावना से ओत-प्रोत है -

शांति नहीं तब तक, जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।[17]

क्रांति के कवि दिनकर भविष्य में स्थायी शांति के लिए समाज में साम्यवाद की नूतन स्थापना को महत्वपूर्ण मानते हैं।वह मानते हैं की सारी विषमताओं को साम्यवाद के द्वारा ही खत्म किया जा सकता है जब मनुष्य में संचय की प्रवृत्ति नहीं होगी और न दूसरों का अन्यायपूर्वक होगा।

न्याय शांति का प्रथम न्यास है,
जब तक न्याय न आता,
जैसा भी हो, महल शांति का
सुदृढ़ नहीं रह पाता।[18]

कुरुक्षेत्र में राष्ट्रवाद का स्वर सिर्फ क्रांति के सर्जन का ही नहीं है अपितु साम्यवादी समाज के निर्माण से भी अभिप्रेरित है।भले ही 'कुरुक्षेत्र' की रचना राष्ट्रकवि दिनकर ने युग के प्रभाव से युद्ध की समस्या पर की हो पर कुरुक्षेत्र का मूल स्वर राष्ट्रवादी एवं भाव मानवतावादी है।दिनकर साम्यवाद एवं मैत्री की भावना को देश के विकास और स्थायी शांति के लिए आवश्यक मानते हैं।कुरुक्षेत्र में औपनिवेशिक शासन से चोट खाए हुए राष्ट्र के क्रोध का उग्र स्वर है तो साथ ही कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण भी एवं नये भारत के निर्माण का उज्जवल स्वप्न भी।दिनकर 'कुरुक्षेत्र' में मानवता के उत्थान के लिए वैचारिक रूप से देश की हर छोटी बड़ी समस्या न्याय-अन्याय, नीति-अनीति, समानता-असमानता, सामाजिक बनावट, जाति व्यवस्था पर भी विचार करते है।दिनकर राष्ट्रहित एवं वैश्विक शांति के लिए दृढ संकल्पित हैं और जनमानस को अभिप्रेरित करते हैं।

पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का,
जीवन स्निग्ध, सरल हो,
मनुज-प्रकृति से विदा सदा को,
दाहक द्वेष-गरल हो।[19]

सन्दर्भ

1. सिंह.रामधारी दिनकर, हुंकार, लोकभारती प्रकाशन, कोलकत्ता(2015),आमुख
2. सिंह. रामधारी दिनकर, कुरुक्षेत्र, राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली(2007) पृ.52
3. सिंह.रामधारी दिनकर, रश्मिलोक, लोकभारती प्रकाशन, कोलकत्ता(2011)भूमिका

4. सिंह.रामधारी दिनकर,कुरुक्षेत्र,राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट,दिल्ली(2007)निवेदन
5. सिंह.रामधारी दिनकर,कुरुक्षेत्र,राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट,दिल्ली(2007).पृ.33
6. वही, पृ.32
7. वही, पृ.33
8. वही, पृ.20
9. वही, पृ.20
10. वही, पृ.21
11. वही, पृ.21
12. वही, पृ.22
13. वही, पृ.16-17
14. वही, पृ. 12
15. वही, पृ.11
16. वही, पृ.20
17. वही, पृ.23
18. वही, पृ.23
19. वही, पृ.29

राष्ट्रकवि दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

* कुमारी रागिनी

* शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय बोधगया

मानव की सहज सामुदायिक भावना ने समूह को जन्म दिया, जो कालान्तर में राष्ट्र के रूप में स्थापित हुआ। जिन जन समुदाय में एकता की एक सहज लहर हो उसे राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्र विशेष गुणों या राष्ट्र के प्रति विशिष्ट प्रेम को राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता राष्ट्र विशेष की आत्म चेतना है। राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्र या देश के प्रति व्यक्ति का संवेदनशील घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। तभी तो मनुष्य अपने देश के प्रति आत्मीय लगाव का अनुभव करता है। राष्ट्र-प्रेम मानव में राष्ट्र के समाज, प्रकृति, उसकी संस्कृति, उन्नति और विकास के प्रति भावनात्मक लगाव उत्पन्न करता है। राष्ट्र-प्रेम की मनमोहक छाया में पहुँचकर मानव के मन की भावनात्मक विकास भूत, वर्तमान से लेकर भविष्य तक हो जाता है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना अनन्त काल से रही है। राष्ट्रीय विचारधारा अविरल गति से हिन्दी में बहती आई है। इसने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। आधुनिक युग में हिन्दी काव्य में पौरूष का प्रतीक और राष्ट्र की आत्मा का गौरव गायक जिस कवि को माना गया है, उसी का नाम "रामधारी सिंह दिनकर' 'है। "दिनकर" जी का जन्म 24 सितम्बर 1908 ई० को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास, राजनीति विज्ञान में बी0 ए0 किया। बी0 ए0 की परीक्षा उतीर्ण करने के बाद एक विद्यालय में अध्यापक बने। 1934 से 1947 ई० तक बिहार सरकार की सेवा में सब रजिस्ट्रार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। 1950 से 1952 ई० तक लंगट सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे। फिर सन् 1952 से 1963 इ0 तक राज्य सभा सदस्य बने रहे। इसके बाद 1964 ई0 में भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति बने।

दिनकर का आविर्भाव उस समय हुआ, जब छायावाद चरमोत्कर्ष पर था। प्रारम्भ से ही दिनकर की कविताओं में अपने देश के स्वर्णिम अतीत के प्रति मोह और ब्रिटिश कालीन भारत की दुरव्यवस्था और परतंत्रता के प्रति क्षोभ और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी काव्य रचनाओं में राष्ट्रीय-चेतना अपने परवान पर चढ़ी है। अर्थात् हिन्दी साहित्य में दिनकर की पहचान राष्ट्रकवि के रूप में है। हालाकि यह कोई उपाधि नहीं है लेकिन यह लोक मानस के द्वारा प्रदत्त है। जो कि आज भी इनकी कविताएँ जन-जन में समाहित है। इनकी कविताएँ राष्ट्रीय जागरण एवं संघर्ष के आह्वान का जीता-जागता दस्तावेज है। तभी तो इनकी कविताओं में वाणी में ओज, लेखनी में तेज, भाषा में अबाध प्रवाह और राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। राष्ट्रकवि दिनकर ने काव्य-क्षेत्र में 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' जैसी महान कृतियाँ देने अतिरिक्त रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, बापू, इतिहास के आँसू, धूप और धुआँ, रश्मिरथी, नीम के पत्ते, दिल्ली, नील कुसुम, परशुराम की प्रतीक्षा आदि अनेक कुतियाँ प्रदान की है। राष्ट्रकवि दिनकर ने ओजस्वी शब्दों में राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ में अतीत का गौरव-गान किया है जो कि 'रेणुका' में संकलित 'हिमालय' कविता में देखा जा सकता हैं-

"तु पूछ अवध से राम कहाँ ? वृदा घनश्याम कहाँ है
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक? वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?
री कपिलवस्तु! कह बुद्धदेव के ये मंगल उपदेश कहाँ ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन तक गये हुए संदेश कहाँ ?"

'इतिहास के आँसू' में कवि की सभी कविताएँ हमारे इतिहास से संबंधित है किन्तु कवि का राष्ट्र-प्रेम और उसका ओजपूर्ण स्वर भी इनमें मुखरित है। इस काव्य संग्रह में कवि ने इतिहास के महान योद्वाओं की वीरता का गुणगान किया है। अतः कवि ने वर्तमान की समस्याओं के लिए अतीत का द्वार भी खटखटाया है। इस प्रक्रिया में उनके मानस में जिन विशेष व्यक्तियों के चित्र उभरते है उनमें गौतम बुद्ध और अशोक का स्थान प्रमुख है। वर्तमान का निमंत्रण लेकर जब कवि अतीत के द्वार पर पहुँचता है तो उसे विशेषकर बलशाली मगध अथवा नालंदा और वैशाली की ही याद आती है। तभी तो कवि पाटलिपुत्र की गंगा से पूछता है कि वह कौन से विशाद है, कैसी व्यथा है जिस कारण आज उसके प्रवाह शिथिलता दृश्टिगोचर हो रही है। गंगा साक्षी है हमारे उस गौरवपूर्ण अतीत की जिसकी तूती सम्पूर्ण भारत में ही नही अपितु विदेशों में भी बोलती थी। गुप्त वंश की गरिमा, अशोक की करुणा, गौतम बुद्ध का शांति संदेश, लिच्छिवियों की वैशाली सभी की स्मृति उसके मानस में अवश्य ही सुरक्षित होगी। कवि केवल अतीत के गौरव की स्मृति मात्र से संतुष्ट नहीं है बल्कि उनसे प्रेरणा लेकर भारतमाता की गुलामी की बेड़ी को काटने की प्रेरणा भी देता है। तभी तो कवि आह्वान करता है-

"समय माँगता मूल्य मुक्ति का, देगा कौन माँस की बोटी?
पर्वत पर आदर्श मिलेगा, खाएँ चलो घास की रोटी।।

परतंत्रता की बेड़ियो में जकड़ी हुई भारत भूमि से वह स्पष्ट शब्दो में पूछता है-

"ओ भारत की भूमि वंदिनी ओ जंजीरों वाली।
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़कर जन्मी थी वैशाली?"

हुंकार' में कवि ने तूफान का आह्वान किया है। कवि स्वर्ग तक को जला देने की इच्छा व्यक्त करता है। इसमें उनका रूप बडा ही दिव्य और ज्वलंत है-

"ज्योतिर्धर कवि में ज्वलित और मंडल का
मेरा शिखर अरुणाय किरीट अनल का
स्थ में प्रकाश के अश्व जुटे हैं मेरे
किरणों में उज्ज्वल गीत गुथे है मेरे।"

'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने युद्ध के दो स्तर बाह्य और आंतरिक स्पष्ट किये है। कुरुक्षेत्र अपने समय और समाज के प्रति जागृति का संदेश देने वाला समन्वय की भूमि पर स्थित काव्य है। जहाँ युद्ध की अनिवार्यता धर्म एवं शांति के मंगल की शुभकामना सन्निहित है। कवि कहता है कि जब तक मन में विकारी भाव रहेंगे तब तक समाज में युद्ध अवश्यंभावी है। कुरुक्षेत्र में कवि अखण्ड शांति का संदेश देता है-

"है बहुत देखा सुना मैने मगर
भेद खुल पाया धर्मा-धर्म का
आज तक ऐसा रेखा खींच कर
वाँट दूँ मैं पाप को और पुण्य को।"

कवि की 'धूप और धुआँ 'काव्य संग्रह स्वतंत्रता, राष्ट्र कल्याण, बलिदानियों पर श्रद्धा सेनानी की वीरता आदि ज्वलंत विषयों से परिपूर्ण है। इनकी सोच राष्ट्रवादी सोच है और स्वदेश गौरव तथा स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है-

"मां का आंचल है फटा हुआ,
इन दो टुकडों को सीना है।
देखे देता है कौन लहू
दे सकता कौन पसीना है?"

दिनकर की " परशुराम की प्रतीक्षा " कविता चीन से युद्ध के दिनों में अत्यंत प्रसिद्ध हुई। कवि ने इस कविता में देश के सैनिकों को अहिंसा त्यागकर पौरूष बनने का आह्वान किया है। कवि ने देश के पौरूष को जागृत करते हुए सिंह गर्जना की है -

"वैराग्य छोड़ बाहों की विभा संभालो
चट्टानों की छाती से दूध निकालो
है रूकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ों,
पीयूष चन्द्रमाओं को पकड़ निचोड़ो
चढ तुंग शैल शिखरों पर सोम पियो रे
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे। "

दिनकर का हृदय स्वभावतः ही राष्ट्रीय है, राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए जिन वीरों ने बलि दी, कवि उसका जयकार लगाते हुए कहता है -

"कलम आज उनकी जय बोल
जला अस्थियाँ बारी-बारी
छिटकायी जिनने चिनगारी
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर
लिए बिना गरदन का मोल। "

दिनकर की काव्य में राष्ट्रीय चेतना वर्तमान की पुकार से सजग और क्रान्ति का नारा लगाती है। उसे शक्ति के प्रति अगाध आस्था है -

"बल के सम्मुख बिनत मेड़-सा, अम्बर शीश झुकाता है।
इससे बढ़कर सौन्दर्य दूसरा, तुमको कौन सुहाता है।

है सौन्दर्य शक्ति का अनुचर, सुन्दरता निस्सार वस्तु है।
हो न साथ में शक्ति अगर।"

दिनकर की काव्य 'सामधेनी' और 'कुरुक्षेत्र' द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीयों द्वारा भोगी गयी कठिनाइयों और विपत्तियों को पृष्ठभूमि बनाकर हुई है, जो कि राजनीति, स्थितियों और चेतना से प्रभावित है। सन् 1942 ई० में "भारत छोड़ो "आन्दोलन का प्रस्ताव पास होने पर अंग्रेजों द्वारा दमन चक्र निर्ममतापूर्वक चला। दिनकर की आग की अग्नि" इसी पीड़ित जनता का ही चित्र है -

"सुलगती नहीं यज्ञ की आग दिशा धूमिल यजमान अधीर,
पुरोधा कवि कोई है यहाँ ? देश को दे ज्वाला ले तीर।"

दिनकर की राष्ट्रीयता पर उनके युग का प्रभाव पड़ा है। उनका युग दलित और शोषण युग था। उसी समय दिनकर जी सीना तानकर आगे आये और तत्कालीन परिस्थितियों से लोहा लिया। इनको कविताओं में फ्रान्ति का उद्घोष है, हृदय की ज्वाला है, दास्तां की पीड़ा है और उसके विरूद्ध की भावना है। उन्होंने बड़े साहस के साथ भारत माता की की बेड़ियों को काटने के लिए अपने ओजस्वी विचार की खड़ग धारण की। दिनकर ने अपने काव्य में राष्ट्रीय चेतना के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है -" संस्कारों से मैं कला के समाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मेरा मन भी चाहता था कि गर्जना तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूॅं जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से मिला, किन्तु आत्मा अब भी 'रसवन्ती' में बसती है। राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नही आती। उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है। " तभी तो दिनकर के काव्य में प्रणय और राष्ट्रीयता को दो समान धाराएँ प्रवाहित हुई है

राष्ट्रकवि दिनकर की चेतना महान है। वे संवेदनाओं एवं संचेतनाओं के कवि है। उनके काव्य का अवलोकन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि उनके काव्य राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है। उन्होंने शुरूआत ही राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित काव्य से की और अलग-अलग संदर्भों में राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य में दशार्या है। उन्होंने सामाजिक उत्थान-पतन और आन्दोलन से प्रभावित होकर काव्य-सृजन किया है। देश पर जब-जब संकट के बादल घिरते हैं, मानव-जीवन संघर्ष में जुझने लगता है, तब-तब 'दिनकर' की कविताएँ जन-मानस में उर्जा का संचार करती है। तभी तो दिनकर हिन्दी साहित्य संसार में आज भी अमर हैं।

सन्दर्भ

1. राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्य कला-शिखर चन्द्र जैन
2. दिनकर का वीर काव्य-धर्मपाल सिंह आर्य
3. दिनकर एनु शताब्दी -डॉ० स्वयंवती शर्मा, डॉ० दिनेश कुमार
4. दिनकर की काव्य भाषा-डॉ० यतीन्द्र तिवारी
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ० नगेन्द्र

दिनकर कृत 'हिमालय' में राष्ट्रीय चेतना

* नियति कल्प

* सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

शोध सार

राष्ट्रकवि दिनकर ने अपने संपूर्ण काव्य में समष्टिगत भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके काव्य में मुख्य रूप से दो स्वर अभिव्यंजित होते हैं- राष्ट्रीय चेतना का स्वर तथा अपने देश भारत की प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का स्वर। दिनकर की कवि-प्रतिभा का प्रथम उन्मेष राष्ट्रीय कविताओं में दृष्टिगत होता है। समय के साथ कवि का यह स्वरूप विस्तृत और गहन होता चला गया। विदित है कि कवि की रचनाओं पर तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ होता है।कवि जो देखता है,महसूस करता है उसे ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। साथ ही साथ समस्याओं के अपेक्षित समाधान भी प्रस्तुत करता है।

'हिमालय' कविता दिनकर की राष्ट्रीय चेतना से आपूरित एक ओजपूर्ण रचना है। उक्त कविता में कवि ने भारत के अतीत के गौरव- गान के साथ-साथ तत्कालीन पराधीन भारत में भारतीयों खासकर युवा वर्ग की सहनशीलता, चुप्पी और मौन को तोड़ने के लिए हिमालय को माध्यम बनाया है।कहा जाता है कि अन्याय करने वाले से अधिक गलत अन्याय सहन करने वाला होता है। जिस देश को स्वाधीन रूप में, अखंड रूप में देखने के लिए कई वीरों ने हँसते-हँसते अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए, उस देश के वासियों का मौन कवि को अत्यधिक पीड़ित करता है। 'हिमालय' कविता में कवि ने भारत के मुकुट,उसके प्रहरी हिमालय को देश की जनता खासकर युवावर्ग का पर्याय मान उसका आह्वान करते हुए उसे अजेय बतलाया है।जब देश में अराजकता का माहौल है और विदेशियों द्वारा देश की जनता को पददलित करने की हरसंभव कोशिश की जा रही है ,ऐसे समय में अपने साहस और पराक्रम का प्रदर्शन कर देश को आततायियों से मुक्त कराना आवश्यक है। हिमालय के माध्यम से कवि ने पराधीन जनता में अदम्य शौर्य एवं साहस भरने की भरपूर कोशिश की है।

बीज शब्द: राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय गौरव, युवाशक्ति, आह्वान

राष्ट्रीय चेतना का संबंध ऐसी भावना से है जिसमें राष्ट्र के प्रति प्रेम और उसके हित की चिंता निहित हो। राष्ट्र के प्रति अनन्य निष्ठा और निःस्वार्थ प्रेम ही राष्ट्रीय चेतना का पर्याय है। राष्ट्रीय चेतना की जीवंतता,उसकी सजीवता मानव धर्म की स्थापना में निहित है। व्यक्ति की स्वदेश पर मर मिटने की आकांक्षा ही राष्ट्रीय भावना को मजबूती प्रदान करती है।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना, उसकी चेतना का प्रवर्तन मुख्यतः भारतेंदु युग में हुआ। यद्यपि हिन्दी में राष्ट्रीय विचारधारा द्रुतगति से इसके बहुत पहले से बहती आई है, जिसने राष्ट्रीय चेतना के व्यापक प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।हिन्दी साहित्येतिहास के चार कालखंडों में अगर पहले कालखंड आदिकाल की बात की जाए तो अधिकांश चारण- भाटों द्वारा लिखे गए रासो काव्यों में आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में मुख्य रूप से राष्ट्रीय भावना ही उभर कर सामने आती है। जनजीवन में राष्ट्रीय एवं जातीय भावनाओं से ओतप्रोत भावों का संचरण ही उनकी काव्य- रचना का मूल उद्देश्य हुआ करता था।भले ही राजाओं द्वारा मिलने वाली वृत्ति का लोभ उनके मन में कहीं न कहीं छिपा अवश्य था।

दूसरे कालखंड भक्ति काल की बात की जाय तो समूचे काल में भक्ति की प्रवृत्ति की प्रधानता परिलक्षित होती है परंतु महाकाव्य 'रामचरितमानस' के सातवें काण्ड उत्तरकांड में रामराज्य की परिकल्पना हमारी राष्ट्रीय चेतना, उसकी भावना के अनुरूप तो है ही।उसमें भी राष्ट्रीयता अनुगूंजित होती है। तीसरे कालखंड रीतिकाल की बात की जाए तो कवियों द्वारा श्रृंगारपरक रचनाएं अधिक लिखी गई परंतु भूषण जैसे कवियों द्वारा राष्ट्रभक्त राजा शिवाजी और राजा छत्रसाल की वीरता और पराक्रम का ओजपूर्ण वर्णन एक प्रकार से राष्ट्रीय चेतना का ही प्रतिरूप है। कवि बिहारी ने भी अपने कई दोहों में अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

आधुनिक काल की शुरुआत भारतेंदु युग से मानी जाती है। आधुनिक भाषा,आधुनिक शैली,आधुनिक विधाओं के साथ-साथ आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का भी प्रादुर्भाव भी भारतेन्दु युग की देन है। भारतेंदु युगीन रचनाकारों ने परतंत्र देश के नागरिकों में स्वतंत्रता का अलख जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। द्विवेदि युग,छायावाद और छायावादोत्तर कवियों ने भी देशवासियों की राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध करने का कार्य अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। विशेषकर जयशंकर प्रसाद, सुभद्रा कुमारी चौहान, श्याम नारायण पांडेय,मैथिलीशरण गुप्त,माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा'नवीन',सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने सुप्त देशवासियों के हृदय में अवस्थित स्वतंत्रता की छटपटाहट को टटोला और अपनी रचनाओं के माध्यम से उसकी प्रस्तुति की।

रामधारी सिंह दिनकर छायावादोत्तर युग के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने अपने संपूर्ण साहित्य में समष्टिगत भावनाओं को प्रश्रय देते हुए उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके काव्य में मुख्य रूप से दो स्वर अभिव्यंजित होते हैं - राष्ट्रीय चेतना का स्वर तथा अपने देश भारत की प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का स्वर। राष्ट्रीय चेतना एवं भावना से परिपूरित रचनाओं के कारण ही उन्हें जनता द्वारा मैथिलीशरण गुप्त के बाद 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया गया। "उनकी पहली कविता-पुस्तिका 'विजय संदेश' (1928) की कविताएं इस बात का प्रमाण हैं कि उनकी कवि- प्रतिभा का प्रथम उन्मेष राष्ट्रीय कविताओं में हुआ। उसकी सारी कविताएं बारदोली के किसान-संघर्ष से प्रेरित हैं, जो सरदार पटेल के नेतृत्व में चला था और जिसमें किसानों की विजय हुई थी।"[1] कवि ने स्वयं लिखा है कि जब उसने लिखना शुरू किया तो "सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वातंत्र्य- संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी, जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी।.... मैं अपने समय के हाथ में निश्छल वंशी बन कर पड़ गया।"[2] समय के साथ कवि की राष्ट्रीय भावना का यह स्वरूप व्यापक और विस्तृत होता चला गया। "'विजय संदेश'(1928 ई०), 'रेणुका'(1935 ई०), और 'हुंकार'(1940 ई०) की कविताओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उग्र राष्ट्रवाद की क्रांतिकारी चेतना दिनकर के मन को मोह रही थी। उनकी कविताओं में उग्र राष्ट्रवाद का यह सिलसिला 'हिमालय के प्रति'(1933 ई०)शीर्षक कविता की रचना से लेकर सामधेनी(1947 ई०) की कविताओं तक चलता है। उनकी कविताओं में जो आक्रोश का प्रखर स्वर या गर्जन-तर्जन दिखायी देता है वह तत्कालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों में स्वाभाविक था। उनकी उग्र राष्ट्रीय चेतना 1933 ई० में रची गई 'हिमालय के प्रति' शीर्षक कविता में बहुत स्पष्ट रूप में विद्यमान है।"[3]

'हिमालय' शीर्षक कविता राष्ट्रकवि दिनकर की एक ओजपूर्ण रचना है।यह कविता उनके 'रेणुका' शीर्षक काव्य संग्रह में संगृहित है।" 'रेणुका' के संबंध में यह ज्ञातव्य है कि उसके प्रथम संस्करण और बाद के संस्करणों में काफी फर्क है। दिनकर जी ने प्रथम संस्करण की कई कविताओं को निकाल ही नहीं दिया है, उसमें कई नई कविताएं जोड़ भी दीं हैं।....उन्होंने कुछ कविताओं का शीर्षक भी बदल दिया है। रेणुका के बाद के संस्करणों में उसकी 'हिमालय के प्रति' कविता 'हिमालय' हो गई है।"[4] उक्त कविता में दिनकर ने हिमालय को भारत में राष्ट्रीयता के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक के रूप में उपस्थित किया है।"जिस दिन उनके हृदय में हिमालय फूटा उसी दिन से उनकी प्रतिभा ने एक नयी दिशा की ओर गति की। अतीत- गौरव की स्मृति तथा खंडहरों के प्रति दिनकर ने जिस भावुकता का परिचय दिया, वह अप्रतिम है। भारत के उन अवशिष्ट स्वरूपों के साथ भारतीय जीवन की जो भावधारा प्रवाहित होती रही है, उसमें कवि ने अपने भावप्रवर्तिनी शक्ति से तरंगे उत्पन्न की हैं, लोक- हृदय की अंतर्भूमि को अपनी मार्मिक वाणी से अनुकंपित किया है। प्रागैतिहासिक या ऐतिहासिक काल से ही जो हमारे सुख-दुख के सहचर रहे

हैं उनको हृदय- ग्राह्य रसात्मक रूप देने का यह अच्छा प्रयास किया गया है।"[5]

'हिमालय' कविता के माध्यम से दिनकर ने भारत के अतीत का, उसके गौरव का गान किया है। अतीत के गौरव के प्रति कवि के हृदय में सहज आदर और आकर्षण है।साथ ही वर्तमान परिवेश की नीरसता से त्रस्त कवि मन के दुःख और वेदना का परिचय भी हमें मिलता है। दिनकर की कविताओं का प्रवाह भावनाओं को बांध लेने में सदा सफल और सक्षम रहा है। ऐसी ही कविताओं में लोकप्रिय कविता 'हिमालय' भी है। जिसने भी यह कविता पढ़ी है, उसे शब्द याद हों ना हों परंतु कविता की हुंकार, उसका ओज पाठक के मन-मस्तिष्क में सदा रह जाता है। इस कविता की चर्चा करना ओज की भावना को पुनः पुनः उपस्थित कर देना है।

दिनकर की राष्ट्रीयता के पीछे लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं तथा भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे बलिदानियों की प्रेरणा रही थी।राष्ट्रीयता की भावना के प्रति उन्होंने स्पष्ट किया है -"राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया।.... अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज आती, फाँसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द-भरी ऐंठन की वह आवाज सुनायी देती जो गांधीजी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्रनायकों के हृदय में चल रही थी जिन से बढ़कर मैं और किसी को श्रद्धेय नहीं समझता था।"[6]

सर्वविदित है कि कवि की रचनाओं की पृष्ठभूमि में उसकी समकालीन परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ होता है। कवि जो देखता है, महसूस करता है उसे ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करता है।साथ ही साथ समस्याओं के अपेक्षित समाधान भी प्रस्तुत करता है।तब भला राष्ट्रकवि दिनकर तत्कालीन समस्याओं के जिक्र से भला अछूते कैसे रहते ?अंग्रेजों की क्रूर शासन व्यवस्था से मुक्ति के लिए भारतीय जनता उठ खड़ी हो,इसके लिए यह आवश्यक था कि वह उस हीन भावना से ऊपर उठे जिसे अंग्रेजों ने उसके अंदर कूट-कूट कर भर दिया था।अंग्रेजी शासन व्यवस्था के अत्याचार और अनाचार ने कवि को जितना दुःख नहीं पहुंचाया,उससे कहीं अधिक भारतीयों की खासकर युवावर्ग की चुप्पी और नीरसता ने पहुंचाया। उक्त कविता में कवि ने हिमालय का आह्वान किया है या ऐसा कहा जाय कि हिमालय के माध्यम से भारतीय जनता खासतौर पर युवा वर्ग का आह्वान किया है। उसे स्मरण दिलाया है,उसे ललकारा है।हिमालय विशाल है गौरव से परिपूर्ण है, अचल है, रक्षक है, करुणा से भरा हुआ है, सक्षम है- इन सभी बातों का स्मरण कराते हुए दिनकर भारतीय सभ्यता के महत्वपूर्ण बिंदुओं का स्मरण दिलाते हैं और यह आह्वान करते हैं कि नींद से जगाकर भारतवर्ष को उसकी प्रतिष्ठा, उसके सम्मान को पुनः स्थापित किया जाय। कविता का रचनाकाल 1933 ई० है। उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति का यदि अवलोकन हम करें तो वह एक सच्चे भारतीय को उद्वेलित करने वाली है। 1929 ई० के कांग्रेस के अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की घोषणा हो चुकी थी। सन 1930 ई० में गोलमेज सम्मेलन सफल हो चुका था। 1930 ई० में ही में नमक सत्याग्रह हुआ। 1931 ई० में गांधी- इरविन पैक्ट।1931 ई० में ही भगत सिंह को फांसी की सजा हुई। गांधीजी राष्ट्र के नेता के रूप में पहले ही स्थापित हो चुके थे। ऐसे समय में दिनकर हिमालय का आह्वान करते हैं। आखिर क्यों?इसका कारण यह है कि सारी कोशिशों के बावजूद अंग्रेजों द्वारा भारत को स्वतंत्रता दिए जाने के बारे में कुछ भी नहीं किया जा रहा था। हर संभव,हर मौके पर इस बात को दबा देने की कोशिश जरूर हो रही थी।ऐसे में दिनकर को हिमालय का ध्यान आता है। हिमालय सदियों से भारतवर्ष का प्रहरी है, रक्षक है। साथ ही उनको स्मरण होता है भारत की विभूतियों का, यहां के विश्व संदेश का,मानव धर्म का, उनके विचारों का और तब वे हिमालय को संबोधित करते हैं। हिमालय भारतीय संस्कृति के गौरव का विराट रूप है,पौरुष का पुंजीभूत ज्वाल है। दिनकर उसकी शक्ति, उसकी भव्यता की याद दिलाते हैं जिसके प्रकारांतर में भारत की जनता भी स्वतः लक्षित है-

"मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !"[7]

कवि ने विशाल हिमालय की महिमा का गान करते हुए उसे भारत माता का मुकुट कहा है,दिव्य भाल कहा है। हिमालय सदियों से अजेय है, मुक्त है, निर्बंध है। हिमालय को अजेय कहने के पीछे इस की भौगोलिक स्थिति भी है। हिमालय ने भारत की अनेक आक्रमणों से रक्षा की है।

"एक कवि के रूप में दिनकर का आविर्भाव हमारे जातीय जीवन के एक संकटापन्न समय में हुआ था। भारतवर्ष पराधीनता के दुश्चक्र में फंसा हुआ था; और स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों से अनथक संघर्ष का क्रम जारी था। ऐसे समय में जनजागरण की विराट् हलचल का नेतृत्व करते हुए, 'हिमालय' की दृढ़ता के साथ, हिंदी साहित्यकाश में दिनकर का उदय हुआ। लेकिन दिनकर का भावबोध और उनकी काव्यात्मक संवेदना अपेक्षाकृत अधिक विकसित थी। इसीलिए वह अपनी 'हिमालय' शीर्षक कविता के माध्यम से राष्ट्रीय गौरव के बोध को जन- जन तक फैलाने में पूर्णतः सफल हुए;और बहुत ही कम समय में, जनसामान्य ने उनकी कविताओं को अपना कंठहार बना लिया।"[8]

दिनकर हिमालय को तपस्वी की भांति समाधि में लीन देख उससे प्रश्न करते हैं कि आखिर किस जटिल समस्या का समाधान वह महाशून्य में ढूंढ रहा है? आज भारतभूमि पर संकट के बादल छाए हुए हैं। आज जरूरत है कि तपस्वी हिमालय अपनी आँखे खोले और देश की जनता जो प्रताड़ित है,दुखी है,उसे देखे। कहने का तात्पर्य है कि देश की यह समस्या सिर्फ बाहरी शत्रुओं को लेकर नहीं है वरन् देश की आंतरिक समस्या भी कम नहीं है। अशिक्षा,बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, गरीबी जैसी अनेक समस्याएं सर्प की भांति ही हैं।हजारों वर्षों तक भारत धन-धान्य संपन्न देश था। हमारे देश को 'सोने की चिड़िया' की संज्ञा प्राप्त थी। लेकिन देश को किसी की नज़र लग गई। आक्रमणकारियों ने हमारे देश को लूट लिया। अर्थव्यवस्था को तबाह कर दिया। इसी कारण हमारे देश का वैभव भी मिट गया। देश गरीबी और भूखमरी जैसी समस्याओं को निपटाते- निपटाते वीरान हो गया। देश में यह अनाचार का ही फल है कि आज भी कई द्रौपदियों ने न्याय के इंतजार में अपने केश खुले रखे हैं। दिनकर भारत के गौरवशाली इतिहास को याद करते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम राम, कृष्ण के साथ-साथ अशोक और चंद्रगुप्त सरीखे वीर योद्धाओं का भी स्मरण करते हैं। तत्कालीन पराधीन देश में वे भारत के नौजवानों के हृदय में छिपे क्रोध और असंतोष को अग्नि के समान दाहक बताते हैं।ऊपर से देखने पर तो वे समुद्र के समान शीतल प्रतीत होते हैं पर वास्तविकता यह है कि देश की अराजक परिस्थिति से उन नवयुवकों का हृदय सुलग रहा है। दिनकर यह मानते हैं कि अब धीरज धरने का समय नहीं है वरन् अपने पराक्रम और शौर्य से स्वतंत्रता प्राप्ति करने का समय है।अब कर्म करने का समय आ चुका है। देश की ऐसी विपत्ति में धर्म का ज्ञान रखने वाले, धीरज धरने वाले युधिष्ठिर की जरूरत नहीं है क्योंकि वे देश की उचित तरीके से सेवा नहीं कर पाएंगे। युधिष्ठिर की शोभा स्वर्ग में है।वे भले ही स्वर्ग चले जाएँ परंतु गांडीवधारी अर्जुन और गदाधारी भीम जैसे महान पराक्रमी योद्धाओं को वापस भेज दें जो शत्रुओं का विनाश कर देश की रक्षा कर सकें।विदित है कि महाभारत के युद्ध में भीम और अर्जुन जैसे समर्थ योद्धाओं ने कौरवों की विशाल और महाशक्तिशाली सेना को परास्त किया था। इसलिए कवि हिमालय के माध्यम से ऐसे योद्धाओं का देश में आह्वान करता है।कविता अपने उत्कर्ष पर भी इन्हीं पंक्तियों के साथ पहुंचती है-

"रे,रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।"[9]

उपर्युक्त पंक्तियों में युधिष्ठिर महात्मा गांधी का प्रतिनिधित्व पात्र हैं और अर्जुन-भीम जैसे वीर भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद का। दिनकर यह स्पष्ट तौर पर कहना चाहते हैं कि युधिष्ठिर यानी महात्मा गांधी को जहां जाना हो जाएं लेकिन अर्जुन और भीम यानी भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे वीर योद्धा यहां फिर से लौट आयें। एक प्रकार से वे यही कहना चाह रहे हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों में हमारे देश में शांति के लिए क्रांति की जरूरत है। इस कविता में हिमालय वस्तुतः भारत की युवाशक्ति का प्रतीक है। उसको लक्ष्य कर दिनकर कहते हैं कि गुलामी की आग में झुलसा हुआ तुम्हारा प्यारा देश विकल है। इसके बावजूद तुम मौन और निश्चेष्ट बैठे हुए हो? ऐसा कह कर दिनकर अपने देश की युवा शक्ति का आह्वान कर रहे हैं ताकि उसकी चुप्पी,उदासीनता और निष्क्रियता दूर हो और उसके भीतर दबी हुई क्रांति की चिनगारी भयावह अग्नि की लपटों के रूप में परिणत होकर देश की पराधीनता को जलाकर भस्म कर दे। राष्ट्रकवि भारत की युवा शक्ति के असीम बल से परिचित भली-भांति परिचित थे। क्योंकि अगर किसी देश की युवा शक्ति जाग गई तो उस देश में पराधीनता का अस्तित्व रह ही नहीं सकता।इसी कारण वे भगवान शंकर का आह्वान करते हैं। जिनके प्रलय नृत्य से भारत के युवाओं का प्रमाद दूर भागेगा। हर-हर बम का महोच्चार देश की विपदा को दूर भगायेगा, उसे समाप्त कर

देगा। दिनकर निम्न पंक्तियों में अपनी भावना को अभिव्यक्त करते हैं-

"कह दे शंकर से, आज करें
वे प्रलय- नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर-हर बम' का फिर महोच्चार।"[10]

निष्कर्षतः संपूर्ण कविता हिमालय को कवि का संबोधन है। अतः यह एक संवाद के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है और चूंकि प्रकारांतर से यह कविता जनता को, देशवासियों को,विशेषकर युवाशक्ति को संबोधित है, अतः पाठक, कवि या कविता को स्वयं से संवाद करता हुआ पाता है। उक्त कविता में हिमालय को कवि ने जैसे विशाल भारतीय जनमानस का उदात्त प्रतीक बना दिया है, जो यदि मौन का त्याग कर चेतन हो जाय तो अन्याय की कड़ियाँ स्वयंमेव ही टूट जायेंगी। निःसंदेह राष्ट्रकवि दिनकर की 'हिमालय' कविता राष्ट्रीय चेतना को समाहित किए अनन्य है,अप्रतिम है।

सन्दर्भ

1. नंदकिशोर नवल, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, 2012 ई०, पृ०274
2. रामधारी सिंह दिनकर, चक्रवाल, भूमिका, उदयाचल प्रकाशन,प्रथम संस्करण,1956 ई०,पृ०33
3. कुमार निर्मलेन्दु,दिनकर एक पुनर्विचार,लोकभारती पेपरबैक्स,प्रथम पेपरबैक संस्करण,2021 ई०, पृ० 215
4. नंदकिशोर नवल,तरुण कुमार, दिनकर रचनावली,भूमिका,लोकभारती प्रकाशन, 2021 ई०, पृ० 8
5. डॉ लक्ष्मी नारायण सुधांशु, जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत,जनवाणी प्रकाशन,कलकत्ता, पृ० 24
6. रामधारी सिंह दिनकर,चक्रवाल,भूमिका,उदयाचल प्रकाशन,प्रथम संस्करण, 1956 ई०, पृ. 33
7. रामधारी सिंह दिनकर,रेणुका, उदयाचल प्रकाशन,1954 ई०,पृ० 4
8. कुमार निर्मलेन्दु,दिनकर एक पुनर्विचार,लोकभारती पेपर बैक्स,प्रथम पेपरबैक संस्करण,2021 ई०, पृ० 46
9. रामधारी सिंह दिनकर, रेणुका, उदयाचल प्रकाशन,1954 ई०,पृ० 7
10. वही,पृ० 7

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में उपनिवेशवाद का विरोध और राष्ट्रीयता

* राकेश रंजन

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बी.एस.कॉलेज, दानापुर, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

शोध सार

रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रेम, सौंदर्य एवं पौरुषेय के कवि हैं। उनका काव्य-क्षेत्र में आगमन छायावादोत्तर युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उत्तर-छायावाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा दिनकर की ज़मीन है। उनकी कविताओं में जीवन, समाज और परिवेश का अपूर्व सम्मिश्रण है। जहाँ उर्वशी में वे सौंदर्य-प्रेम एवं रूपाकर्षण को चरमोत्कर्ष पर ले जाते हैं वहीं कुरुक्षेत्र में विप्लव एवं परिवर्तन की चेतना को। उनकी सामाजिक चेतना एवं क्रांति की कविताओं की भाव-भूमि एक तरफ़ भारतीय स्वाधीनता संग्राम और दूसरी तरफ़ द्वितीय विश्व-युद्ध को स्पर्श करती है। वे काजी नज़रूल इस्लाम, कार्ल मार्क्स, गाँधी से प्रभावित होने के बावज़ूद किसी एक विचारधारा से आबद्ध नहीं रहे। अपनी सामाजिक चेतना की बदौलत वे सदैव अन्याय और अव्यवस्था के विरुद्ध खड़े नज़र आते हैं। उनकी कविता में आम शोषित-पीड़ित जनता की सक्रिय उपस्थिति उनकी कविता को जनता के बीच प्रतिष्ठापित करती है। रेणुका, हुंकार में कवि के स्वाधीनता संग्राम का आवेश और उद्वेग कुरुक्षेत्र तक आते-आते गंभीर हो जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि खड़ी बोली हिन्दी कविता की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता की भावना थी। दिनकर का कालखंड अंग्रेजी उपनिवेशवाद की क्रूरता का चरम-बिंदु है; इसीलिए उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीयों के निर्णायक संघर्ष का भी। उपनिवेशवाद के तथाकथित विधि सम्मत शोषक सरकार प्रजा का स्वत्व निचोड़ लेते हैं और प्रजा से शांत रहने की अपेक्षा करते हैं। उपनिवेशवाद पर केंद्रित भारतीयों की स्थितियों का सबसे बेहतर गल्प प्रेमचंद ने गढ़ा है और सबसे बेहतर कविताएँ दिनकर ने रची हैं। प्रस्तुत आलेख दिनकर की कविताओं के भीतर उपनिवेशवाद के विरोध की विभिन्न स्थितियों की पड़ताल के साथ-साथ भारतीयों की अदम्य जिजीविषा, राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, उनके भीतर के प्रतिशोध-विप्लव-परिवर्तन की चेतना के सहारे उनकी राष्ट्रीयता की भावना को जानने-समझने का भी एक प्रयास है।

बीज शब्द: उपनिवेशवाद, राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, क्रांति, परिवर्तन

रामधारी सिंह 'दिनकर' उत्तर-छायावाद की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवि माने जाते हैं। छायावाद का परवर्ती रूप हिन्दी साहित्य में 'उत्तर-छायावाद' के नाम से पुकारा जाता है। यह एक अल्पकालिक काव्यधारा है। परंतु अपनी अल्पकालिकता के बावज़ूद यह विशिष्ट है क्योंकि छायावाद और प्रगतिवाद के बीच एक कड़ी के रूप में इसका योगदान है। 1930 के आस-पास जब छायावादी कविताओं ने प्रौढ़ता को प्राप्त कर लिया था, उसी दौरान हिन्दी जगत में तीन बड़े कवियों का प्रवेश होता है। वे हैं- भगवती चरण वर्मा, बच्चन और दिनकर। जहाँ पहले के दो कवियों में प्रेम, मस्ती, उल्लास और अपने प्रति दृढ़-विश्वास का तत्त्व प्रधान है, वहीं दिनकर के स्वच्छंदतावाद में एक सामाजिकता भी समाई हुई है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'दिनकर' की उमंग

और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है।... उसका मन व्यक्त रूप से मस्ती और मौज का उपासक है। किन्तु उसके भीतर अव्यक्त और अलक्षित रूप से सामाजिक चेतना का वेग है।... दिनकर अपने ढंग के अकेले हिन्दी के कवि हैं। यौवन और जीवन उन्हें आकृष्ट करते हैं, सौन्दर्य का मोहन संगीत उन्हें मुग्ध करता है, पर वे इससे अभिभूत नहीं होते। उल्लास और उमंग सच्चे अर्थों में मानवता की मुक्ति से ही संभव है।[1] यही मानव की मुक्ति का प्रश्न उन्हें अन्य दोनों कवियों से अलग करता है।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी छायावाद का 'दूसरा उन्मेष' उत्तर-छायावाद' के रूप में देखते हैं जिसने प्रगतिवाद के लिए ठोस भूमि तैयार करने में सराहनीय भूमिका अदा की। 'उत्तर-छायावाद' शब्द छायावाद के उपरांत विकसित होने वाली दो काव्यधाराओं 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा' और 'वैयक्तिक कविता' के संदर्भ में रूढ़ हो गया है और वहीं 'छायावादोत्तर' के अंतर्गत 'उत्तर-छायावाद' के साथ वे समस्त काव्यधाराएँ आ जाती हैं जो छायावाद के बाद अस्तित्व में आई, जैसे- उत्तर-छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता इत्यादि। रामस्वरुप चतुर्वेदी लिखते हैं, 'उत्तर-छायावादी' साहित्य छायावादी काव्य और उसके समानांतर लिखा गया आधुनिक सृजनशीलता की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।... इनकी रुचि तात्कालिक समाधानों में अधिक थी। संदर्भ चाहे प्रेम के हों, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के हों या कि फिर मानव क्रांति के।... छायावादी के संश्लिष्ट जीवनानुभव उत्तर-छायावाद में सीधे-सरल अधिक हो चले। 'मस्ती का काव्य' और 'राष्ट्रीय भाव-धारा' इसकी विशेषता है।[2]

यह सर्वमान्य है कि खड़ी बोली हिन्दी कविता की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता की भावना थी। जिस अंग्रेजी उपनिवेशवाद का पुरज़ोर विरोध भारतेन्दु अपने नवजागरण से प्रारंभ करते हैं, दिनकर उस अंग्रेजी उपनिवेशवाद की क्रूरता को चरम-बिंदु तक ले जाते हैं। यही वज़ह है कि दिनकर का समय अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीयों के निर्णायक संघर्ष का कालखंड है। जवरीमल्ल पारख उपनिवेशवाद को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं, "जब किसी देश पर शासन करने वाली राजनीतिक सत्ता किसी दूसरे देश या क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित कर उसे अपने अधीन कर लेती है, तो अधीनस्थ क्षेत्र को उपनिवेश कहा जाता है। उपनिवेश स्थापित करने की इस प्रक्रिया को उपनिवेशीकरण और उपनिवेश स्थापित करने के राजनीतिक सिद्धांत को उपनिवेशवाद (Colonialism) कहते हैं।"[3] लैटिन भाषा के शब्द 'कोलोनिया' का मतलब है एक ऐसी जायदाद जिसे योजनाबद्ध ढंग से विदेशियों के बीच कायम किया गया हो। भूमध्यसागरीय क्षेत्र और मध्ययुगीन यूरोप में इस तरह का उपनिवेशीकरण एक आम परिघटना थी। लेकिन, जिस आधुनिक उपनिवेशवाद की यहाँ चर्चा की जा रही है उसका मतलब है यूरोपीय और अमेरिकी ताक़तों द्वारा ग़ैर-पश्चिमी संस्कृतियों और राष्ट्रों पर ज़बरन कब्ज़ा करके वहाँ के राज-काज, प्रशासन, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, भाषा, धर्म, व्यवस्था और जीवन-शैली पर अपने विजातीय मूल्यों और संरचनाओं को थोपने की दीर्घकालीन प्रक्रिया। इस तरह के उपनिवेशवाद का एक स्रोत कोलम्बस और वास्कोडिगामा की यात्राओं को भी माना जाता है।[4] समझा जा सकता है कि उपनिवेशवाद का निहितार्थ शोषण ही है। तथाकथित विधि सम्मत शोषक सरकार प्रजा का स्वत्व निचोड़ लेते हैं जबकि प्रजा से शांत रहने की अपेक्षा करते हैं। उपनिवेशवाद का यही राजनीतिक और आर्थिक दर्शन है।

दिनकर का कालखंड राजनैतिक रूप से काफी उथल-पुथल का रहा है। सन् 1930 से सन् 1935 तक हमारा राजनीतिक जीवन भी निराशाओं की कहानी मात्र था। राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी सक्रिय थे। 1930 में गांधीजी की प्रसिद्ध दाण्डी-यात्रा आरंभ हुई। नमक-कानून तोड़ा गया जिससे विद्रोह की चिंगारी सारे देश में आग की लपट की तरह फैल गई। सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ कई स्थानों पर सशस्त्र विद्रोह भी हुए पर गांधी इरविन पैक्ट और गोलमेज सम्मेलन की असफलता ने इस आंदोलन की रीढ़ तोड़ दी। इन समझौतों के फलस्वरूप गांधीजी को सरदार भगत सिंह और उनके मित्रों की फांसी का तोहफा मिला। गांधी जी भगत सिंह को नहीं बचा सके और सन् 1933 में वे कांग्रेस की सक्रिय राजनीति से अलग हो गए। सत्याग्रह आंदोलन वापिस ले लिया गया जिससे सुभाषचंद्र बोस अत्यधिक क्षुब्ध हुए उन्होंने नए सिद्धांतों के आधार पर कांग्रेस के पुनर्गठन की बात कही और सन् 1934 में समाजवादी दल का जन्म हुआ जिससे सन् 1935 के बाद भारतीय राष्ट्रवाद समाजवाद के प्रगतिशील तत्त्वों से अनुप्राणित होने लगा। सन् 1934 में

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (जो भारत सरकार द्वारा अवैध घोषित कर दिए जाने पर सन् 1942 तक गुप्त रूप से कार्य करती रही) और कांग्रेस–समाजवादी दल की स्थापना भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ था। "इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एशिया, अफ्रीका तथा लातिन अमेरिका के देशों में साम्राज्यवाद का विरोध जोर पकड़ रहा था। यूरोप में न केवल फासिज्म का उदय हुआ अपितु द्वितीय विश्वयुद्ध के बीजांकुर भी फूटने लगे थे। उत्तर छायावादी कवियों ने पूर्ण गंभीरता के साथ आशा-निराशा से भरी इन्हीं परिस्थितियों को वाणी दी और ''हिंदी कविता को देश और विश्व के व्यापक यथार्थ से जोड़कर इसे जनता तक पहुंचा दिया क्योंकि इसी में उसकी सार्थकता थी।"[5]

इस प्रकार राजनीतिक उतार-चढ़ावों के इस माहौल में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती गयी और इस व्यापक राष्ट्रीय जागृति की हलचल में हमारा साहित्य पनपा और फूला-फला जिसकी परिणति राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के रूप में हुई। वहीं दूसरी ओर गाँधीवादी अतिशय नैतिकता से नए आधुनिक मनुष्य के तालमेल न कर पाने से समाजवादी विचारधारा को पनपने का अवसर मिला जिससे उस समय व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिला, जिससे काव्य में व्यक्तिवादी चेतना का उदय हुआ और उनका काव्य व्यक्तिगत-संघर्ष और उसकी सफलता-विफलता की कहानी कहता रहा। वैयक्तिक कविता इसका सशक्त प्रमाण है।

इस दौरान जहां एक तरफ अंग्रेजों का आततायी रूप निरंतर सामने आता जा रहा था उसी दौरान नवजागरण के कारण भारत के विशेषतः हिंदी प्रदेश के लोगों में राष्ट्रीय भावना का उत्थान अपने प्रबल रूप को प्राप्त कर रहा था। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण भारत के लोगों में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरोध की भावना अत्यंत बलवती होने लगी। हुंकार की भूमिका में रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है- "राष्ट्रीय कविता की जो परम्परा 'भारतेन्दु' से प्रारम्भ हुई, उसकी परिणति हुई है 'दिनकर' में।... जबकि चारों ओर अंधकार ही अंधकार था, दरबार के विषाक्त वायु-मंडल ने बेचारी कविता को बहू-बेटियों के नग्न-सौंदर्य-वर्णन की बेहयाई मात्र बना रखा था... पहली बार लोगों ने सुना- "आवहु सब मिलि के रोवहु भारत-भाई!"[6] दिनकर तक आते-आते राष्ट्रीयता की भावना अपने उग्र रूप को प्राप्त कर लेती है। ये वो समय था जब देश का क्षितिज नवयुवकों की छाती से निकलते हुए खून से लाल हो रहा था। कोड़े खाते हुए निर्दोष जनता के मुँह से निकलती हुई वन्देमातरम की हर आवाज़ एक नए आगाज़ का संदेश दे रही थी और फांसी पर झूलते हुए निर्भीक चेहरे भविष्य के पट पर लिखे हुए इतिहास की आहट दे रहे थे। उस दौर में दिनकर ने इतिहास की इन घटनाओं को कसौटी पर कसते हुए लिखा-

'जब भी अतीत में जाता हूं मुर्दों को नहीं जिलाता हूं
पीछे हटकर फेंकता बाण जिससे कम्पित हो वर्तमान
खंडहर हो, हो भग्नावशेष, पर कहीं बचा हो स्नेह शेष,
तो जा उसको ले आता हूं, निज युग का दीया जलाता हूं।'

इस समय राष्ट्रीय चेतना की भावना भारत के जन-जन में एक बदलाव की इबारत लिखने के लिए तैयार खड़ी नज़र आती है। निःसंदेह यह वह समय था जब हमारे राजनेताओं के अलावे कवियों, साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक व्यापक जन-चेतना का निर्माण करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद आदि की रचनाएं अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

विजेन्द्र नारायण सिंह लिखते हैं- "उपनिवेशवाद का सबसे पीड़ादायक पक्ष होता है देश के स्वाभिमान का अंत और अस्मिता का ध्वंस। 'हिमालय' (रेणुका) इसी अस्मिता की तलाश और जागरण की कविता है। उत्तुंग हिमालय में कवि को राष्ट्रीय स्वाभिमान और अस्मिता का प्रतिरूप दीख पड़ता है। उपनिवेशवाद के द्वारा कुचले हुए स्वाभिमान की अभिव्यंजना है- 'है तड़प रहा पद पर स्वदेश।' विदेशी आक्रांता ने देश को भूलुंठित कर अपने पद पर गिरा रखा है। हिमालय उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का महाभाव प्रतीक बन जाता है।"[7] दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का प्रारंभ 'रेणुका' द्वारा होता है और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में उसका पूर्ण विकास होता है। युगीन अत्याचार, अहंकार और आडंबर के नाश के लिए कवि कह उठता है-

"गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो
लगे आग इस आडंबर में,
वैभव के उच्चाभिमान में,
अहंकार के उच्च शिखर में,
स्वामिन्, अन्धड़-आग बुला दो,
जले पाप जग का क्षण-भर में।"[8]

अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध यही आह्वान माखनलाल चतुर्वेदी भी करते हैं-

तोड़ अमीरों के मनसूबे, गिन न दिनों की घड़ियाँ
बुला रही हैं तुझे देश की कोटि-कोटि झोपड़ियाँ।[9]

उपनिवेशवाद पर केंद्रित भारतीयों की स्थितियों का सबसे बेहतर गल्प प्रेमचंद ने गढ़ा है और सबसे बेहतर कविताएँ दिनकर ने रची हैं। बक़ौल विजेन्द्र नारायण सिंह 'हाहाकार' भारतीय किसानों की बेमिसाल ग़रीबी का शोकगीत है। कभी खलिहान किसानों के लिए खुशहाली की जगह हुआ करती थी। पर उपनिवेशवादी शोषण ने इसे रोने और आंसू बहाने की जगह बना दी।... उपनिवेशवाद के तहत पूंजीपति महाजन और ज़मींदार के बीच शोषण का गठबंधन स्थापित हुआ। इन दोनों ने अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों के संरक्षण में किसानों का सर्वस्व निचोड़ कर उन्हें ऋण के बोझ से दबा दिया। उनकी उनकी ज़मीन रेहन-बंधक रहने लगी।[10] ऋण अदा करने में ही किसानों का जीवन समर्पित हो गया। दिनकर अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के साथ-साथ निरंकुश राज्य व्यवस्था और सामंतवाद का भी विरोध करते हैं। इन निरंकुश राजाओं की स्वेच्छाचारिता और सामंती भोग-विलास में जनता हर प्रकार से पीड़ित होती चली गयी।

दिनकर का कवि सामंतवाद के पतन का सीधा आह्वान करता है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपनिवेशवाद के तहत भारत की जो राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक अवनति और आर्थिक विपन्नता आई उसी के प्रतिरोध में दिनकर की कविता रची गई। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कहा था, 'जिस तरह मैं जवानी भर इक़बाल और रवीन्द्र के बीच झटके खाता रहा, उसी प्रकार मैं जीवन-भर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूं। इसलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है, वही रंग मेरी कविता का है। मेरा विश्वास है कि अंततोगत्वा यही रंग भारतवर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा।'[11]

हिमालय से दिनकर की जो उपनिवेशवाद विरोधी उग्र राष्ट्रीय काव्य धारा चली उसकी परिणति हुंकार, कुरुक्षेत्र और परशुराम की प्रतीक्षा में देखने को मिली। दिनकर को अपनी इस सोच और मानसिकता की बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी। दिनकर की राष्ट्रीय भावना उनकी लेखनी के साथ-साथ और उग्र होती चली गई। अंग्रेजों के जुल्म और युद्ध की परिणति ने दिनकर को विचलित-सा कर दिया था। दिनकर ने युद्ध के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हुए कुरुक्षेत्र जैसा ग्रन्थ लिखा। कुरुक्षेत्र में तो दिनकर ने जैसे अपनी आत्मसंघर्ष की पूर्ण परिणति ही कर दी। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध की विभिषिका देखी थी। उनके सामने महात्मा गांधी का सत्य और अहिंसा पर आधारित स्वाधीनता आंदोलन था जिससे प्रभावित होकर उनमें एक वैचारिक द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ कि अत्याचार और अन्याय का विरोध अहिंसा के जरिए करना ठीक है या कृष्ण द्वारा हिंसामूलक युद्ध की नीति उचित है। दिनकर युद्ध के औचित्य पर सवाल खड़ा करते हुए कहते हैं-

'शांति नहीं तब तक, जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो
नहीं किसी को अधिक हो
नहीं किसी को कम हो।'

दिनकर जितने कठोर उपनिवेशवाद को लेकर थे उतने ही संवेदनशील मानवता को लेकर भी थे। उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत के विभाजन को लेकर दिनकर ने जैसे देश की आत्मा का पूरा दर्द इन शब्दों में ढाल दिया है-

'हाथ की जिसकी कड़ी टूटी नहीं
पांव में जिसके अभी ज़ंजीर है
बांटने को हाय तौली जा रही
बेहया उस कौम की तकदीर है।'

राष्ट्रीयता के बारे में दिनकर का विचार है कि "राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया।... अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज़ आती, फांसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज़ सुनाई देती जो गांधी जी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्र नायकों के हृदय में चल रही थी, जिनसे बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरी समझ में उस समय सारे देश में एक स्थिति थी जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वतंत्रता संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी। प्रसाद, निराला, पंत जैसे अपने वरिष्ठ समकालीनों की चर्चा करते हुए भी वे लिखते हैं, 'वे फिर भी संयमशील रहे, किंतु मुझ जैसे लोग राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं के प्रवाह में बह गए।'[12]

खड़ी बोली हिंदी-कविता की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता को समझने के साथ-साथ यह समझना भी ज़रूरी है कि उस समय राष्ट्रीय भावना क्रांतिकारी भावना थी। उसमें गांधीवाद, समाजवाद या फिर सशस्त्र क्रांति के जरिए आजादी की राह खोजने वाले सब शामिल थे। अगर हम बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में लिखी गई ऐसी कविताओं को पढ़ें तो देखेंगे कि उनमें एक सशक्त, भयविहीन भारत की कल्पना की गई है। भारत की 5000 साल पुरानी, लंबी संस्कृति की स्मृति भी उन कविताओं में है। अंग्रेजों के क्रूर शासन से मुक्ति के लिए भारतीय जनता उठ खड़ी हो इसके लिए ज़रूरी था कि वह उस हीनभाव से उबरे जो ब्रिटिश हुकूमत ने उसके अंदर कूट-कूट कर भर दिया था। आश्चर्य नहीं कि स्वामी विवेकानंद युवकों के बीच काफी लोकप्रिय हुए। उन्होंने मात्र धर्म-प्रचार नहीं किया, भय से मुक्ति का आह्वान ही उनके समूचे अभियान का मूल था। उसी तरह गांधीजी ने अहिंसा का जो राजनीतिक अस्त्र निकाला, उसके जरिए उन्होंने साधारण भारतीय को यह अहसास कराया कि उसे ब्रिटिश हुकूमत से लड़ने के लिए अलग से किसी शारीरिक बल की या हथियारों की मदद की ज़रूरत नहीं है। एक भय मुक्त मानव मज़बूत से मज़बूत शासन के लिए कितना खतरनाक हो सकता है- गांधीजी को देखकर भारत की जनता ने इस बात को समझा। गांधी जी ने यह भी दिखलाया कि अपने देश या राष्ट्र की मुक्ति या भलाई का मतलब दूसरे देश या राष्ट्र का अहित करना नहीं है। इस तरह राष्ट्रीयता की जिस भावना का संचार गांधी जी के द्वारा हुआ, उसमें दूसरों के मुकाबले अपनी श्रेष्ठता का अहंकार न था, आक्रामकता न थी बल्कि समानता के व्यवहार का कोमल नियंत्रण था। राष्ट्रीयता अपने आप में एक उदात्त भावना है, लेकिन जब वह अहंकार और श्रेष्ठत्व के भाव से मुक्त हो जाए तो विश्व बंधुत्व की उच्चता प्राप्त कर लेती है। सौभाग्य से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन्मी राष्ट्रीयता की भावना में ये गुण थे।

दिनकर जी की राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कविताएं इसी भाव से युक्त हैं। वे लिखते हैं कि कवि होने की सामर्थ्य "मुझमें भारतवर्ष का ध्यान करने से जागृत हुई, यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई।" 'रेणुका' और 'हुंकार' की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत प्रखर है। प्रायः इन कविताओं में आह्वान, उद्बोधन, पुकार, बुलाव- ये सब देखने को मिलते हैं। मंगल-आह्वान की ये पंक्तियां ध्यातव्य है-

गत विभूति, भावी की आशा
ले युगधर्म पुकार उठे,
सिंहों की घन-अन्ध गुहा में
जागृति की हुंकार उठे।
जिनका लूटा सुहाग, हृदय में
उनके दारूण हूक उठे,
चीखूँ यों कि याद कर ऋतुपति
की कोयल रो कूक उठे।

दिनकर जी की राष्ट्रीय चेतना का एक दृढ़ आधार है- सामाजिक साम्य के प्रति उनका आग्रह। 'कविता की पुकार' शीर्षक रचना में कवि की इच्छा है-

शस्य-श्यामला निरख करेगा।
कृषक अधिक जब अभिलाषा।
तब मैं उसके हृदय स्त्रोत में
उमड़ूँगी बन कर आशा।

एक तरह से यह कविता दिनकर का घोषणा-पत्र भी है। यहां कविता का उद्देश्य साधारण जन-जीवन को अभिव्यक्त करना तो है ही, दमित-दलित मनुष्यों के जीवन में आशा की किरण जगाना भी है। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना को सामान्य जन-जीवन की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित करने का काम दूसरे कवियों के साथ दिनकर भी कर रहे थे। इसी वजह से हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उनके बारे में लिखा है : वे छायावादियों और प्रगतिवादियों के बीच की कड़ी हैं- कम छायावादी, अधिक प्रगतिवादी।"

दिनकर के सामने एक बात एकदम साफ थी कि भारत की स्वाधीनता से ही यहां के करोड़ों शोषितों की मुक्ति का मार्ग खुल सकता है :

दिल्ली के नीचे मर्दित अभियान नहीं केवल है,
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न-वस्त्र, धन-बल है।
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाल भवानी,
जो तोड़े यह दुर्ग, वही है समता का अभियानी।

दिनकर जी की राष्ट्रवादिता अंधी नहीं, वह गहराई से मानव-मुक्ति के मूल्य से जुड़ी है। युद्ध की संकल्पना अनाचारियों, आततायियों का है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "युद्ध को बुलाने का दायित्व अनाचारियों पर है, शोषणकर्ताओं पर है, प्रतिशोध के आकांक्षी दलितों पर नहीं। यहां यह आभासित होता है कि कवि के मतानुसार प्रतिशोध की भावना दलितों और

उत्पीड़नों में जागती है और वह भी वीरभावना से ओत-प्रोत दलितों में। कवि ने शूरधर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है-

"शूरधर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना।
शूरधर्म है शोणित असि पर धर कर पाँव मचलना।
सबसे बड़ा धर्म है नर का सदा प्रज्वलित रहना।
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नहीं किसी का सहना।"[13]

विद्रोह की पराकाष्ठा दिनकर की इन प्रचलित पंक्तियों में देखी जा सकती हैं-

"श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण।"[14]

जिस समय ये कविताएं लिखी जा रही थीं, एक विवाद संघर्ष में हिंसा के प्रयोग को लेकर भी चल रहा था। 1941 से 1946 के बीच दिनकर जी ने अपना प्रसिद्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' लिखा। यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय भी था। लेकिन जैसा स्वयं दिनकर जी ने स्पष्ट किया है, 'कुरुक्षेत्र' में विश्व-शांति की स्थापना की चिंता कम, अपने देशवासियों की विचार-दिशा बदलने की भावना ज्यादा है। यह इस विचार से प्रेरित था कि "अहिंसा अगर परम धर्म है, तो हिंसा को आपद् धर्म मानना ही पड़ेगा।" कवि के अनुसार कुरुक्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर करते हैं, किंतु जो नवयुवक उनके अहिंसा के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते, उनके प्रतीक भीष्म हैं। हिंसा और अहिंसा युद्ध और शांति का द्वंद्व इसमें महाभारत की कथा के सहारे व्यक्त किया गया है। भीष्म का यह प्रश्न दिनकर का भी प्रश्न है :

समर निन्द्य है धर्मराज, पर कहो, शांति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी बनी हुई सरला है?

मुख़्तसर, दिनकर की कविताओं में अगर विद्रोह है, विस्फोट है, तो जीवन की निर्बाध गति भी है। दिनकर की कला में स्वप्नों का सौन्दर्य नहीं है, उसमें जीवन के संघर्षों का सौन्दर्य है। दिनकर में एक साथ राष्ट्रीयतावादी, उपनिवेशवाद विरोधी स्वर मुखरित होता है, जिसके भीतर भारत के सामासिक सांस्कृतिक चिंतन को लेकर एक समावेशी दृष्टि सक्रिय रहती है, जिनके बौद्धिक मानस में इतिहास, काव्यशास्त्र देश, काल और समाज के प्रति एक उत्तरदायी चेतना विराजती रहती है, जो सत्ता के आश्रय में रहते हुए भी सत्ता की निरंकुशता से टकराता रहता है, जो आलोचकों की परवाह न कर कविता की अपनी डगर पर चलता रहता है और करोड़ों जनता के कंठ से जिसकी पंक्तियां गूंजती रहती हैं। निःसंदेह दिनकर की कविता अपने समय का यथार्थपूर्ण चित्रण है, जिनमें वे समवेत स्वर में औपनिवेशिक सत्ता के ख़िलाफ़ खड़े होकर राष्ट्रीयता का बिगुल बजाते हैं।

सन्दर्भ

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं- 2007, पृष्ठ- 251
2. रामस्वरुप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं- 2010, पृष्ठ 184-188
3. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश (खंड- 2), शंभुनाथ (प्रधान संपादक), भारतीय भाषा परिषद, 2019, पृष्ठ- 672
4. https://hi.wikipedia.org/wiki/उपनिवेशवाद
5. नंदकिशोर नवल, आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 256
6. रामधारी सिंह दिनकर, हुंकार (भूमिका से), उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं-1955, पृष्ठ- 1
7. विजेन्द्र नारायण सिंह, रामधारी सिंह दिनकर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं- 2008, पृष्ठ- 55
8. रामधारी सिंह दिनकर, रेणुका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं- 2009, पृष्ठ- 16
9. सं. श्रीकान्त जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली (दस खंड), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं- 1995, पृष्ठ- 6/253
10. विजेन्द्र नारायण सिंह, रामधारी सिंह दिनकर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, सं- 2008, पृष्ठ- 58-59
11. रामधारी सिंह दिनकर, शेष : निःशेष, पृष्ठ- 376
12. अपूर्वानंद, साहित्य का एकांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं- 2008, पृष्ठ- 57-58
13. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं- 1995, पृष्ठ- 207
14. रामधारी सिंह दिनकर, हुंकार (विपथगा), उदयाचल प्रकाशन, पटना, सं-1955, पृष्ठ- 73

राष्ट्रीय काव्यधारा के यशस्वी कवि : दिनकर

* डॉ. सूर्य प्रताप

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जी एम आर डी महाविद्यालय, मोहनपुर, समस्तीपुर

राष्ट्रीय काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है, जिससे किसी राष्ट्र की महिमा का गुणगान किया जाता है, उसके अतीत गौरव के चित्र अंकित किये जाते हैं, जिससे समूचे राष्ट्र को अपनी स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने के हेतु प्रेरित किया जाता है। जिसमें राष्ट्र प्रेम के साथ साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को स्थिर करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिसमें अपनी मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया जाता है, जिसमें अपने गौरवपूर्ण संस्कृति के प्रति तीव्रानुराग व्यक्त किया जाता है, जिसमें राष्ट्र विरोधी शक्तियों एवं शत्रुओं के तीव्र घृणा एवं क्षोभ जाग्रत करने की शक्ति होती है और जो राष्ट्र की सामुहिक उन्नति, सामुहिक प्रगति एवं सामुहिक समृद्धि के हेतु सर्वसाधारण के हृदय में तीव्र ज्वाला प्रज्वलित करने में समर्थ होता है।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का उत्स सर्वप्रथम वीरगाथा कालीन रचनाओं में देखने को मिलता है। मुसलमान आक्रमणकारी राजाओं के हो रहे निरंतर आक्रमण से लोहा लेने के लिए राजपूत राजाओं में होड़ सी मच जाती है तब उनके दरबारी कवि उनका हौसला बढ़ाने के लिए उनकी शूरता,वीरता एवं पराक्रमशीलता का ओजस्वी बखान करते हैं। पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो,सन्देश रासो,आल्हाखण्ड आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं जिनमें तत्कालीन वातावरण के अनुसार राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

वीरगाथा के उपरांत हिंदी साहित्य के रीतिकाल में राष्ट्रीय काव्यधारा का स्वरूप मिल जाता है। सच पूछा जाए तो इसी काल में आकर राष्ट्रीय काव्यधारा का प्रथम उन्मेष हुआ, क्योंकि इस समय भारत राष्ट्र औरंगजेब जैसे क्रूर ,बर्बर एवं आततायी शासक के दमनचक्र से पिसकर कराह रहा था। ऐसे समय में तीन जननायकों ने इस क्रूर शासक के विरोध का बीड़ा उठाया। महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी, बुंदेलखंड में महाराजा छत्रसाल और पंजाब में गुरु गोविंद सिंह ने इस अत्याचारी शासक के विरुद्ध अपनी तलवार उठाई और इनका उत्साह बढ़ाने के लिए तत्कालीन कवियों में से भूषण, गोरेलाल एवं सूदन ने अपनी लेखनी उठायी। इन कवियों में से भूषण ने अपने राष्ट्र-नायक छत्रपति शिवाजी का गुणगान करके जन जन के हृदय में औरंगजेब के अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध भावनाएँ उत्पन्न कीं। गोरेलाल ने महाराज छत्रसाल की कीर्तिगाथा गाकर बुंदेलखंड के जनजीवन में नवजागरण का मंत्र फूँका और कवि सूदन ने भरतपुर के राजा सूर्यमल की यशोगाथा गाकर राजस्थान के अंतर्गत जनक्रांति की लहर दौड़ाई। गुरुगोविंद सिंह स्वयं एक सिद्धहस्त कवि थे और उन्होंने 'चंडीचरित्र' की रचना करके अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा पंजाब युद्ध का बिगुल बजाया और भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर जूझते रहे।

रीतिकाल के उपरांत आधुनिक काल में आकर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेंदु हरिश्चंद्र ने राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत अपनी ओजमयी रचनाएं प्रस्तुत कीं। भारतेंदु के समय में अंग्रेजी राज स्थापित हो चुका था। अंग्रेज यहाँ का धन लूटकर इंग्लैंड के खजाना भर रहे थे। भारतेंदु ने उनकी इस लूटनीति की घोर निंदा की और जनता की दयनीय दशा देखकर अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज बुलंद की। इतना ही नहीं, उन्होंने ही सर्वप्रथम समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम,देशभक्ति, नारीशिक्षा एवं भारतीय

संस्कृति के महत्व की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया और अतीत के गौरव का गुणगान करके उनके हृदय में स्वदेश,स्वराष्ट्र एवं स्वभाषा के प्रति तीव्रानुराग उत्पन्न किया। उनके 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में उल्लिखित कविताओं के अंतर्गत तत्कालीन भारतवर्ष के जनजीवन की दुरावस्था का ऐसा मार्मिक चित्रण मिलता है कि उसे पढ़ते ही क्षोभपूर्ण वेदना हमारे हृदयों को कचोटने लगती है। भारतेंदु के समान ही उनके सहयोगी कवियों में बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र,बद्रीनारायण चौधरी,ठाकुर जगनमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी आदि कवियों ने भी अपनी अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार किया।

राष्ट्रीय काव्यधारा का अगला उन्मेष द्विवेदी युग' में आकर हुआ। द्विवेदी युग मे राष्ट्रीय भावों से भरी हुई कविताएं सर्वाधिक मात्रा में लिखी गईं और इसी युग मे कवियों के अंतर्गत राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक सशक्त एवं सबल रूप में दिखाई दीं। इस युग के कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपने प्रियप्रवास, वैदेही वनवास आदि काव्यों में राष्ट्रप्रेम,देशभक्ति, लोकहित जैसी भावनाओं का निरूपण किया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' जैसे काव्य में राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और अपनी कविताओं के माध्यम से राष्टीय भावों का सर्वाधिक प्रचार प्रसार किया। पं रामचरित उपाध्याय ने 'राष्ट्र भारती' लिखकर जनजीवन में देशप्रेम के भावों को जगाया। इनके अतिरिक्त पं नाथूराम शंकर, गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही,लाला भगवानदीन, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने भी अपनी अपनी रचनाओं के द्वारा समाज एवं राष्ट्र की स्थिति का चित्रण कर देशवासियों में स्वदेशानुराग की भावना को बलवती किया।

इसी प्रकार आधुनिक कवियों में से जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नन्दन पन्त,सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा आदि ने भी भारत के अतीत गौरव का गुणगान करके जन जन के हृदय में देशभक्ति, स्वदेशाभिमान, राष्ट्रप्रेम जैसी भावनाओं को जगाने का प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी ने विदेशी शासकों के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत करते हुए नवयुवकों में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की प्रेरणा प्रदान की। सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने वीर दर्पपूर्ण गीतों द्वारा आत्मोत्सर्ग की भावना जगायी तथा झाँसी की रामी' कविता द्वारा स्वराष्ट्र के लिए बलिदान का मार्ग प्रशस्त किया। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा स्वातंत्र्य युद्ध के लिए नये नये सैनिक तैयार किये। श्री श्यामनारायण पांडेय ने 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' आदि काव्यों की रचना करके जनमानस के लहू में उबाल ला दिया। ऐसे ही रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी ओजमयी कविताओं द्वारा राष्ट्रप्रेम की भावना को मजबूत किया। अन्य आधुनिक कवियों में सियाराम शरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, रामेश्वर शुक्ल अंचल,शिवमंगल सिंह सुमन आदि कवि भी अपनी रचनाओं द्वारा देशप्रेम की भावना को जगाने में समर्थ हुए हैं, परन्तु इस पूरी परम्परा में आग और पौरुष के कवि दिनकर का स्थान सर्वाधिक मज़बूत नज़र आता है।

जनजागरण की इस राष्ट्रीय काव्यधारा को और भी तीव्र एवं प्रखर बनाने वाले कवि दिनकर हैं जिन्होंने आरम्भ से ही ओजस्विता एवं तेजस्विता से परिपूर्ण कविताएं लिखीं। आपको राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री से राष्ट्रप्रेम, स्वदेशानुराग एवं राष्ट्रभाषा प्रेम की चिंगारी प्राप्त हुई थी तथा मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन जी आदि तत्कालीन कवियों से ओजस्वी काव्य की प्रेरणा मिली। दिनकर जी ने सर्वप्रथम 'जयद्रथ-' के अनुकरण पर ही 'प्रण-भंग' काव्य का निर्माण किया था। फिर 'हुंकार, द्वंद गीत,कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा' जैसे काव्यों की रचना कर देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति एवं विद्रोह का सिंहनाद किया।

कवि दिनकर की 'हुंकार' पहली रचना है जिसमें यौवन की हुंकार भरी हुई है। इसमें कवि बालकृष्ण नवीन की भांति क्रांति की तीव्र भावना भरी हुई है और जो कवि के राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत ऐसी ओजस्वी रचना है जिसमें विप्लव एवं विद्रोह की आग भड़काने वाली कविताएं संकलित हैं। इसमें कवि ने आरंभ से ही स्वयं को

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मंडल का
मेरा शिखंड अरुणाभ किरीट अनल का 1

घोषित किया है। इसी में कवि ने पराधीन दिल्ली की व्यंग्य भरी चुभती हुई कहानी भी लिखी है जो अपने ही पति की समाधि पर इतराती है।

वैभव की दीवानी ! कृषक - मेध की रानी दिल्ली
अनाचार, अपमान, व्यंग्य की चुभती हुई कहानी दिल्ली
अपने ही पति की समाधि पर कुलटे ! तू छवि से इतराती
परदेशी संग गलबहियां दे मन में है फूली न समाती। 2

दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' कविता अत्यन्त प्रसिद्ध हुई।इस कविता में देश के सैनिकों को अहिंसा त्यागकर पौरुष बनने का आह्वान किया गया है। सन् 1962 के चीनी- भारतीय युद्ध के समय कवि दिनकर ने परशुराम की प्रतीक्षा कविता में देश के पौरुष को जागृत करते हुए सिंह गर्जना की थी…

वैराग्य छोड़ बाहों की विभा संभालो
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रुकी जहाँ भी धार,शिलाएँ तोड़ो
पीयूष चन्द्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुंग शैल शिखरों पर सोम पियो रे
योगियों नहीं,विजयी के सदृश जियो रे। 3

इसी तरह हिमालय का गौरव गान करके देशोद्धार की प्रेरणा देते हुए कवि भारत के अतीत वैभव और वीर भाव को जगाना चाहता है…

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गाण्डीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।
कह दे शंकर से, आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर-हर-बम-बम' का फिर महोच्चार। 4

दिनकर थक कर हार मानने वाले कवि नहीं हैं। वे जीत के लिए आखिरी साँस तक लड़ने वाले कवि हैं और इसी से वज़ह वे कहते हैं कि लक्ष्य पास आ जाने पर रुकना उचित नहीं..

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य-प्रकाश तुम्हारा,
लिखा जा चुका अनल-अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।
जिस मिट्टी ने लहू पिया, वह फूल खिलाएगी ही,
अम्बर पर घन बन छाएगा ही उच्छवास तुम्हारा।
और अधिक ले जाँच, देवता इतना क्रूर नहीं है।
थककर बैठ गये क्या भाई! मंज़िल दूर नहीं है। 5

कवि का यही ओजस्वी स्वर रसवंती, द्वंद्वगीत, रेणुका, सामधेनी, इतिहास के आँसू, धूप और धुआँ आदि काव्यसंग्रहों में विद्यमान है। इन सभी कविताओं में कवि ने बड़ी दृढ़ता एवं गम्भीरता के साथ कर्म,उत्साह, पौरुष एवं उत्तेजना के गीत गाये हैं और जनजीवन में प्राण फूंकने का महती कार्य किया है।

राष्ट्रकवि दिनकर की राष्ट्रीयता का एक दूसरा स्वर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमें देखने को मिलता है। दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम, चक्रवाल, सीपी और शंख, नए सुभाषित आदि काव्यसंग्रहों में कवि ने आम जीवन में व्याप्त आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताओं का चित्रण किया है। उन्होंने आज के आज़ाद नागरिक की उस मनोवृत्ति को फटकारा है जिसमें वह सदैव नेताओं की ओर देखता रहता है…

उठ मंदिर के दरवाजों से जोर लगा खेतों में अपने
नेता नहीं, भुजा करती है, सत्य सदा जीवन के सपने।
नेताओं का मोह मूढ़ ! केवल तुझको ठगने वाला है
लगा ज़ोर, अपने भविष्य का बन तू आप प्रणेता ।। 6

ऐसे ही कवि "समर शेष है" कविता में अपने आज़ाद भारत को भूखा देखकर बेचैन हो उठता है और भीषण गर्जना के साथ दिल्लीवासी नेताओं को ललकारता है…

सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रौशनी, शेष भारत में अंधियाला है।
मखमल के परदों के बाहर फूलों के उस पार
ज्यों का त्यों है खड़ा आज भी मरघट का संसार
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ है, समय लिखेगा उनके भी अपराध।" 7

निष्कर्षतः दिनकर साहित्य के अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि ने ऐसी कविताओं का सृजन प्रचुर मात्रा में किया है जनजीवन को शौर्य,पराक्रम एवं वीरता से परिपूर्ण करके कर्मण्यता की ओर उन्मुख करने वाली हैं, जो रग रग में आग दहकाकर मानवों को त्याग और बलिदान के पथ पर ले जाने वाली हैं, जो हृदयों में जोश एवं उमंग के शोले जलाकर अन्याय एवं अनचार के प्रति विद्रोह एवं क्रांति की प्रेरणा देने वाली हैं। इनमें तेजस्विता की आग भरी हुई है, ओजस्विता का आलोक भरा हुआ है और कर्मण्यता का तूफान भरा हुआ है। दिनकर का अधिकांश काव्य बलिदान और वीरता का अमर राग है, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध क्रांति एवं विद्रोह उत्पन्न करने वाला सिंहनाद है, अकर्मण्यता और आलस्य को नष्ट कर जनजीवन में कर्मण्यता, शूरता एवं पराक्रमशीलता के भाव भरने वाला है। श्री भगवतीचरण वर्मा ने इसी कारण लिखा है कि "दिनकर हमारे युग के यदि एकमात्र नहीं तो सबसे अधिक प्रतिनिधि कवि हैं" 8

निस्संदेह कवि दिनकर के काव्य में महर्षि दयानंद की सी निर्भीकता, नवीन जी की सी तेजस्विता, भगत सिंह का स बलिदान, महात्मा गांधी की सी कर्मठता

और कबीर की सी विचारों की स्वछंदता के साथ साथ सुधारवादिता भी भरी हुई है। यही कारण है कि…

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी ! अपने समय का सूर्य हूँ मैं 9

कहने वाले कवि दिनकर हिंदी की जनजागरण सम्बन्धी आधुनिक राष्ट्रीय काव्यधारा में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं।

सन्दर्भ

1. हुंकार- रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ 11
2. वही पृष्ठ 48
3. परशुराम की प्रतीक्षा – दिनकर
4. रेणुका- हिमालय :- दिनकर
5. आशा का दीपक – दिनकर
6. नीम के पत्ते – दिनकर
7. समर शेष है -परशुराम की प्रतीक्षा – दिनकर
8. रामधारी सिंह दिनकर :- भूमिका पृष्ठ 15
9. उर्वशी – दिनकर

दिनकर-काव्य में वर्णित भारतीय संस्कृति के विविध रूप

* डॉ. बिक्रम कुमार साव

* असिस्टेंट प्रोफेसर, बैरकपुर राष्ट्रगुरु सुरेंद्रनाथ कालेज, बैरकपुर, पश्चिम बंगाल

संस्कृति संस्कार, आचरण, शिष्टाचार सभ्यता है। मनुष्य की जीवन शैली है। संस्कृति मनुष्य जीवन की अपनी निजी संपत्ति है जो कि उन्हें परंपरागत प्राप्त होती है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। आधुनिक हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह दिनकर उन विरले साहित्यकारों में से हैं, जो अपनी लेखनी द्वारा भारतीय संस्कृति और वांड्मय को जनमानस तक पहुँचाया है। दिनकर की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के विविध रूपों को प्रस्तुत किया गया है। उनके काव्य में प्रमुख रूप से देव-संस्कृति, दानव-संस्कृति, राजन्य-संस्कृति का न्यूनाधिक चित्रण मिलता है।

देव-संस्कृति : दिनकर के 'उर्वशी' और 'रश्मिरथी' काव्य से देव-संस्कृति की कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। देवता अक्षय यौवन, धूम रहित ज्वाला के सदृश्य उज्ज्वल तथा प्रदीप्त, स्निग्ध और सुकुमार रूप-सौंदर्य से संपन्न सदा अमर रहने वाले प्राणी हैं। किंतु इंद्रियों के माध्यम से स्थूल उपभोग का सुख इन्हें प्राप्त नहीं होता। शरीरोपभोग करने में अक्षम होने के कारण इन्हें रूप-सौंदर्य का पान भी मन अथवा नेत्रों के द्वारा करके ही परितोष करना पड़ता है और देव-संस्कृति के अंतर को स्पष्ट करते हुए दिनकर लिखते हैं --

"प्रश्न उठे या नहीं, किंतु प्रत्यक्ष एक अंतर है,
मर्त्यलोग मरनेवाला है, पर, सुरलोक अमर है।
अमिट, स्निग्ध, निर्धूम शिखा-सी देवों की काया है,
मर्त्यलोग की सुंदरता तो क्षण भर की माया है।
पर, तुम भूल रही हो रम्भे! नश्वरता के वर को;
भू को जो आनंद सुलभ है, नहीं प्राप्त अंबर को।
हम भी कितने विवश! गंध पी कर ही रह जाते हैं,
स्वाद व्यंजनों का न कभी रसना से ले पाते हैं।
हो जाते हैं तृप्त पान कर स्वर-माधुरी श्रवण से,
रूप भोगते हैं मन से या तृष्णा-भरे नयन से।"[1]

देवताओं की मानवों से मैत्री होती थी और असुरों से युद्ध करते समय वे धरती के राजाओं का साहाय्य लिया करते थे। 'उर्वशी' का पुरूरवा भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि अनेक बार देवासुर संग्राम में देवताओं की ओर से युद्ध करके उसने उनहें विजय-श्री उपलब्ध करवायी है --

"भूल गये देवता, झेल, शत्रुता अमित असुरों की
कितनी बार उन्हें मैंने रण में जय दिलवायी है।"[2]

देवताओं के पास ऐसे दिव्य अस्त्र होते थे जिनका प्रहार काल पर भी निष्फल जा सकता था। देवों के अस्त्रों का एक वैशिष्ट¬ यह भी था, उनका उपयोग अनेकानेक बार किया जा सकता था; क्योंकि उनके अस्त्र लक्ष्य-बेधन के उपरांत पुन: उन्हीं के पास लौट आते थे। "रश्मिरथी' में इंद्र कर्ण को ऐसा ही अमोघ अस्त्र प्रदान करते हुए उसकी विशेषता बतलाते हैं --

"ले अमोघ यह अस्त्र, काल को भी यह खा सकता है,
इसका कोई वार किसी पर विफल न जा सकता है।"[3]

अप्सराएँ देव-संस्कृति का अभिन्न अंग थीं। अपने नृत्यादि के द्वारा देवताओं का मनोरंजन करना तथा उनकी भोगेच्छा और काम-वासना को परितृप्त करना ही उनके जीवन की नियति थी। उनका रूप सौंदर्य अप्रतिम था तथा स्वयं ही स्वर्ग-लोक से पृथ्वी पर आने में वे पूर्णत: सक्षम थीं। 'उर्वशी' के प्रथम अंक में कवि ने उनके पृथ्वी पर अवतरित होने का अत्यंत काव्यात्मक एवं सजीव चित्रण किया है -

"कलकल करती हुई सलिल-सी गाती, धूम मचाती
अम्बर से ये कौन कनक प्रतिमाएँ उतर रही हैं?
उड़ी आ रही छूट कुसुम-वल्लियाँ कल्प-कानन से।"[4]

इस प्रकार दिनकर देव- के अनेक विशिष्टताओं को उद्घाटित करने में पर्याप्त सफल् रहे हैं।

दानव-संस्कृति: दिनकर की रचनाओं में कई स्थलों पर दानव-संस्कृति का चित्रण मिलता है। 'उर्वशी' के प्रथम अंक में अप्सरा सहजन्या बतलाती है कि जब वह उर्वशी तथा अन्य अप्सराओं के साथ कुबेर के भवन से आ रही थीं, तो दानव बाज सदृश उन पर टूट पड़ा और वह सबको संत्रस्त कर उर्वशी का अपहरण कर भाग गया --

"नहीं जानती हो कि एक दिन हम कुबेर के घर से
लौट रही थीं जब इतने में एक दैत्य ऊपर से
टूटा लुब्ध श्येन-सा हमको त्रास अपरिमित देकर
और तुरंत उड़ गया उर्वशी को बाँहों में लेकर।"[5]

सहजन्या के उक्त कथन से यह स्पष्ट उद्भासित होता है कि दानव एक नृशंस, अत्याचारी, असभ्य और असंस्कृत जाति थी। वे अत्यंत शक्ति-संपन्न होते थे। देवताओं के विरुद्ध समर करते रहना उनकी विशिष्ट प्रवृत्ति थी। दानवों की अद्भुत शक्ति से देवता भी संत्रस्त रहते। युद्ध में बार-बार उन्हें दानवों के सामने मुँहकी खानी पड़ती थी। कवि 'उर्वशी' में इसी ओर संकेत करते हैं --

"तारा को लेकर पहले भी भीषण समर हुआ था,
दो पक्षों में बँटे, परस्पर कुपित सुरों-असुरों में।
और सुरों के उस रण में भी छक्के छूट गये थे।"[6]

'रश्मिरथी' में कवि ने घटोत्कच के माध्यम से दानवों की अमानवीय और अपरिमित शक्ति का चित्रण किया है। महाभारत युद्ध में भीषण गर्जन के साथ दानव घटोत्कच का कूदना उसी प्रकार था मानो ज्वालामुखी पर्वत का विस्फोट हो गया हो अथवा सागर में ज्वार-भाटा आ गया हो -

"फूटे ज्यों वह्निमुखी पर्वत, ज्यों उठे सिन्धु में प्रलय ज्वार,
कूदा रण में त्यों महाघोर र्गन कर दानव किमाकार।"[7]

दानवों का शरीर आकार में मानवों की भाँति सामान्य न होकर अत्यंत विशाल और भयंकर होता था। उनके पास युद्ध के ऐसे अमानवीय उपकरण थे, जो मानवों के लिए अगम्य थे। वे मानवेतर शक्ति से संपन्न और प्रपंच विधा में इतने पारंगत होते थे कि युद्ध-कला में पारंगत, महाभारत के अप्रतिम योद्धा कर्ण के बाणों के प्रहारों का घटोत्कच पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ रहा था। उसका बल प्रतिक्षण और भी अधिक बढ़ता जा रहा था --

"बाणों से तिल-भर भी अबिद्ध था
कहीं नहीं दानव का तन
पर हुआ जा रहा था वह पशु पल-पल
कुछ और अधिक भीषण।"[8]

इस प्रकार दिनकर ने अपनी रचनाओं में कई स्थलों पर दानव-संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का सहज ही उद्घाटन किया है।

राजन्य-संस्कृति: भारत में राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था थी। राजा प्राय: पराक्रमी, न्यायप्रिय, विवेकी, उदार, धर्म-परायण और कर्त्तव्यनिष्ठ होते थे। "उर्वशी' काव्य का पुरूरवा भी कार्तिकेय के समान विक्रमी, वृहस्पति के सदृश ज्ञानवान, दिवाकर के तुल्य तेजस्वी, इन्द्र के समान पराक्रमी, कुबेर के सदृश धनवान, आकाश के सदृश विशाल हृदय, मेघवत दानी, पुष्प के समान मनोहर और कामदेव के सदृश प्रणयी है --

"कार्तिकेय-सम शूर, देवताओं के गुरु-सम ज्ञानी,
रवि-सम तेजवन्त, सुरपति के सदृश प्रतापी, मानी,
घनद-सदृश संग्रही, व्योमवत् मुक्त, जलद-निभ त्यागी,
कुसुम-सदृश मधुमय, मनोज्ञ, कुसुमायुध-से अनुरागी।"[9]

अधिकतर राजा विलासी होते थे। उनके एकाधिक पत्नियाँ अथवा प्रेयसियाँ होती थीं जो उन्हें नित्य नवीन मादकता से पूर्ण रखतीं। "उर्वशी' काव्य में इस ओर संकेत देते हैं --

"एक घाट पर किस राजा का रहता बँधा प्रणय है
नया बोध श्रीमन्त प्रेम का करते ही रहते हैं,
नित्य नयी सुन्दरताओं पर मरते ही रहते हैं।"[10]

राजा की पत्नियों को वैसे तो सभी राजसुख उपलबध होते थे। वे प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में राजा की सहधर्मिणी का स्थान ग्रहण करती थीं। किंतु अन्य स्त्रियों के साथ राजा के प्रणय-संबंधों में व्यवधान उपस्थित करने का साहस वे नहीं कर पाती थीं। परकीया के साथ बढ़ते हुए पति के संबंधों को भी उन्हें तटस्थ भाव से सहन करने को विवश होना पड़ता। 'उर्वशी' की औशीनरी ऐसी ही रानी है। रानियों की कतिपय अंतरंग सखियाँ होती थीं। जो उनके सुख-दु:ख की सहभागिनी, परामर्शदात्री होती थीं और गुप्त रहस्यों का संधान किया करती थीं। रनिवास की स्त्रियों को सभा-समारोहों में भाग लेने का भी अधिकार था। कालांतर में जब भारत में मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने लगा तो युद्ध के समुपस्थित होने पर क्षत्रिय नारियाँ अपने सतीत्व,

शील और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में कूदकर सामूहिक आत्मदाह करने लगीं। 'हुंकार' में कवि जौहर की उसी गौरवमयी भारतीय परंपरा की ओर इंगित करता है --

"बात-बात पर बजीं किरीचें, जूझ मरे क्षत्रिय खेतों में,
जौहर की जलती चिनगारी अब भी चरम रही रेतों में।
सुन्दरियों को सौंप अग्नि पर, निकले समय पुकारों पर,
बाल, वृद्ध औ तरुण विहँसते खेल गये तलवारों पर।"[11]

राजन्य-संस्कृति में राजपुत्रों का समाज में विशिष्ट स्थान था और उन्हें विशेष अधिकार प्राप्त थे। कोई अक्षत्रिय व्यक्ति राजपुत्र से द्वंद्व युद्ध नहीं कर सकता था। राजपुत्र से द्वंद्व युद्ध के लिए उसे कोई न कोई राज्य हस्तगत करना अनिवार्य था। 'रश्मिरथी' में कर्ण जब अर्जुन को द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारता है तो यही बात कृपाचार्य कहते हैं --

"क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है,,यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
... ...
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिए पहले कोई राज।"[12]

उस युग में दो विरोधी पक्षों में सामंजस्य एवं समझौते की स्थापना के लिए दूत अथवा मध्यस्थ भेजने की प्रथा थी। 'रश्मिरथी' के श्रीकृष्ण पाण्डवों के अज्ञातवास से लौटने पर पाण्डवों और कौरवों में राजनीतिक मतभेद को समाप्त करने की दृष्टि से पाण्डवों के दूत बनकर जाते हैं --

"मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को, भीषण विध्वंश बचाने को,
भगवान हस्तिनापुर आये, पाण्डव का संदेश लाये।"[13]

'उर्वशी' के पंचम अंक में कवि ने राजसभा के दृश्य का चित्रण करते हुए यह दिखलाया है कि राजा की सभा में बड़े-बड़े मंत्रियों और सभासदों का तो विशिष्ट स्थान होता ही था, राज ज्योतिषी भी राजा की विशेष श्रद्धा और विश्वास के पात्र होते थे। प्राचीन काल में राजा चतुर्थ वय के उपस्थित होने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर स्वयं संन्यास ग्रहण कर वन में चले जाते थे। "उर्वशी' का पुरूरवा भी अपने पुत्र आयु को अपना मुकुट पहनाकर स्वयं वन में चला जाता है।

द्वापरयुगीन संस्कृति में मनोरंजन के अन्य साधनों तथा क्रीड़ा-व्यापारों के साथ-साथ द्यूत को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। राजाओं की भी द्यूत-क्रीड़ा में विशेष रुचि थी। वस्तुत: महाभारत युद्ध के कारणों में एक प्रमुख कारण यह द्यूत भी था -

"किसे ज्ञात था, खेल-खेल में यह विनाश छायेगा?
भारत का दुर्भाग्य द्यूत पर चढ़ा हुआ आयेगा।"[14]

इस प्रकार दिनकर के काव्य में 'राजन्य-संस्कृति' के विविध पक्षों का स्पष्ट चित्रण हुआ है। इसके अलावा भारतीय संस्कृति के विविध उपादानों जैसे --आश्रम व्यवस्था, पारिवारिक आदर्श, नैतिक आदर्श, धार्मिक अनुष्ठान, वेशभूषा, परंपरा आदि का वर्णन हम उनके काव्य में देख सकते हैं। नगर और ग्राम के कोलाहल से दूर, जीवन के सुखोपभोगों, ऐश्वर्य एवं वैभव-विलास के कृत्रिम जीवन से सर्वथा अछूते, जीवन के बाह्याडंबरों से रहित, प्रकृति की रमणीय, शांत, सुखद तथा शीतल क्रोड़ में अवस्थित ऋषि-मुनियों के आश्रम भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण अंश थे। कवि ने आश्रम के रुचिर प्राकृतिक वातावरण का अत्यंत आकर्षक रमणीय चित्र अंकित किया है --

"शीतल, विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स-प्रस्रावण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर प्रस्रवण!
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है विस्तृत एक उटज पावन।"[15]

दिनकर ने अपने काव्य में पारिवारिक जीवन के आदर्शों में संतान के चारित्रिक विकास के लिए माता-पिता के सदुपदेशों की अपेक्षा उनके सदाचरण पर अधिक बल दिया है --

"बच्चों को नाहक संयम सिखलाते हो।
वे तो बनना वही चाहते हैं जो तुम हो।
तो फिर जिह्वा को देकर विश्राम जरा-सा
अपनी ही दृष्टांत न क्यों दिखलाते हो।"[16]

अपने उच्च नैतिक आदर्शों के कारण भारतीय संस्कृति का विश्व की अन्य संस्कृतियों में अन्यतम स्थान है। दिनकर के काव्य में मैत्री, दान, गुरु भक्ति, शिष्य-प्रेम, वृद्धजनों के प्रति आदर, दृढ़ प्रतिज्ञा आदि आदर्शों को अपार-बल मिला है। 'रश्मिरथी' का कर्ण मैत्री और दानशीलता का अद्भुत दृष्टांत प्रस्तुत करता है। 'रश्मिरथी' के द्वितीय सर्ग में गुरुभक्ति और शिष्य प्रेम तथा 'रश्मिरथी', "कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' में माता-पिता के प्रति अपार श्रद्धा-भक्ति के नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई है। उनके काव्य में भारतीय नारी की परंपरागत वेश-भूषा का चित्रण है। भारतीय परंपरा के अनुसार विवाह के अवसर पर बालिका के मस्तक और माँग में सिंदूर लगाया जाता है

तथा प्राय: उसे गोटे से ग्रथित किनारों वाली पीतवर्ण की साड़ी पहनायी जाती है। कवि ने इसी वेश-भूषा में सुसज्जित नववधू का चित्रण किया है --

"माथे में सेंदुर पर छोटी दो बिन्दी चमचम-सी
पीला चीर, कोर में जिसकी चकमक गोटा-जाली।"[17]

व्रत-उपासना, यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य के चतुर्थ सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा किये गये राजसूय यज्ञ का उल्लेख किया है। राजसूय यज्ञ के साथ-साथ भारतीय-संस्कृति में पुत्रेष्टि यज्ञ का भी बहुत महत्व रहा है। 'उर्वशी' काव्य में राजा पुरूरवा द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराये जाने का उल्लेख है। भारतीय संस्कृति में व्रत और उपासना का महत्व धार्मिक दृष्टि से तो है ही, निजी इच्छापूर्ति के निमित्त भी व्रतोपासना का विधान है। 'उर्वशी' में पुरूरवा की पत्नी औशीनरी अपने पति के प्रेम को अर्जित करने के लिए व्रत रखती है और चन्द्रमा की अराधना करती है --

"प्रिय की प्रीति हेतु रानी कोई व्रत साध रही हैं
सुना, आजकल चन्द्र-देवता को आराध रही हैं।"[18]

बहरहाल, दिनकर ने संस्कृति में परंपराओं के महत्व को अक्षुण्ण माना है। अपनी परंपराओं के परित्याग तथा दूसरे की परंपराओं के वरण को वे निन्दित, घृणित और हीन कृत्य मानते हुए कहते हैं --"जातियों का सांस्कृतिक विनाश तब होता है जब वे अपनी परंपराओं को भूलकर दूसरों की परंपराओं का अनुकरण करने लगते हैं, जब वे अपने रस्म-रिवाजों को छोड़कर दूसरों के रस्म-रिवाज अपनाने लगते हैं, जब उन्हें अपने पूर्वजों पर ग्लानि और दूसरों के पूर्वजों पर श्रद्धा होने लगती है तथा जब वे मन ही मन अपने को हीन और दूसरों को श्रेष्ठ मानकर मानसिक दासता को स्वेच्छया स्वीकार कर लेते हैं।"[19] कवि ने परंपरा को सदा प्राणवान और समाज को जीवन प्रदान करने वाली माना है। उन्होंने उसकी रक्षा पर बल दिया है। परंपरा के विनष्ट होने पर लोगों की आस्था छिन्न-विच्छिन्न हो जाती है। अपनी संस्कृति और समाज से उनका एक प्रकार से संबंध विच्छेद हो जाता है। परंपरा की रक्षा पर बल देने के साथ-साथ कवि समयानुकूल उसमें परिवर्तन करने तथा उसकी दुर्बलताओं और विकृतियों को दूर करने का भी समर्थन करता है।

सन्दर्भ

1. दिनकर रामधारी सिंह, 'उर्वशी', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण:1961, पृष्ठ 61
2. वही, पृष्ठ संख्या – 114
3. दिनकर रामधारी सिंह, 'रश्मिरथी', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण :2007, पृष्ठ 64
4. दिनकर रामधारी सिंह, 'उर्वशी', पृष्ठ 2
5. वही, पृष्ठ 7
6. वही, पृष्ठ 114
7. दिनकर रामधारी सिंह, 'रश्मिरथी', पृष्ठ 92
8. वही, पृष्ठ संख्या -- 93
9. दिनकर रामधारी सिंह, पृष्ठ 25
10. वही, पृष्ठ संख्या -- 15
11. दिनकर रामधारी सिंह, 'हुंकार', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण:193, पृष्ठ 37
12. दिनकर रामधारी सिंह, 'रश्मिरथी', पृष्ठ 15-16
13. वही, पृष्ठ 35
14. दिनकर रामधारी सिंह, 'कुरुक्षेत्र', राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली संस्करण :2006, पृष्ठ
15. दिनकर रामधारी सिंह, 'रश्मिरथी', पृष्ठ 20
16. दिनकर रामधारी सिंह, 'नये सुभाषित', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण :1975, पृष्ठ 20
17. दिनकर रामधारी सिंह, 'रसवंती', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण:1939, पृष्ठ 1
18. दिनकर रामधारी सिंह, 'उर्वशी', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण:1961, पृष्ठ संख्या--18
19. दिनकर रामधारी सिंह, 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण :1955, पृष्ठ संख्या – 3

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

* इंदु पी.

* शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी)] दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई

"कानो कानो को सही नहीं,
चुपके चुपके, छिप आह न भर,
तू बोल, सोचता है जो कुछ,
पहरों की टुक, परवाह नकर,
अब नहीं गाँव में भिक्षु और
दिल्ली में कोई दानी है,
तू दास किसी का नहीं स्वयं,
स्वाधीन देश का प्राणी है।"

तेजस्वी एवं ओजस्वी वाणी के स्वामी दिनकर जी उत्तर छायावाद के प्रतिनिधि कवियों में से श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो छायावाद व रहस्यवाद के घुटन, पीड़ा एवं व्यथा से पृथक एक नई चेतना का आधार थी और वह थी राष्ट्रीय भावना की चेतना। आधुनिक काल से पहले गाँधीवादी विचारधारा ने राष्ट्रवाद को अभिनव दृष्टि दी जिससे इस चेतना को व्यापकता का रूप मिला। इसी विचारधारा से प्रभावित हो कवियों ने साहित्य को राष्ट्रीय स्वर प्रदान किया जिनमें माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी एवं रामधारी सिंह दिनकर के नाम महत्वपूर्ण हैं।

इन कवियों ने अपने काव्य सृजन द्वारा भारत के प्रति क्रांति की भावना स्वतंत्रता की अलख, मानवता का उद्घोष प्रदान किया और साहित्य को एक नई दिशा देने में सफल हुए।

दिनकर के काव्य जगत का आविर्भाव तब हुआ जब चहुँ ओर पराधीनता का तम गहराया हुआ था और गाँधीवादी विचारधारा इस अंधकार के लिए आशा का दीपक बनी थी परन्तु दिनकर जी अहिंसावादी विचारधारा से कम, क्रांतिकारी भावना के अत्यधिक समर्थक जान पड़े, और इसी क्रांति की अलख जगाने हेतु इन्होंने काव्य रचना में क्रांति का लाल रंग भरा।

"वीर बारदोली वन्द
खल-दल गंजनी
अरि-वल - भंजनी
संतत सुभग स्व जन-मन-रंजनी
दुर्दमनीय 'महिष' पर दुर्गे!
कठिन--क्रान्तिकारिणी वन्दे
वीर बारदोली वन्दे"
(विजय संदेश, 1928)

इन पंक्तियों से उन्होंने अपने काव्य लेखन का श्री गणेश किया जो कि सरदार वल्लभ भाई जी के नेतृत्व में चले बारड़ोली सत्याग्रह पर आधारित थी। ऐसे विचार महज़ एक बीस वर्षीय युवक के थे। ..... जिनकी कल्पनाशीलता आसमान छूती नज़र आती है जब वे यह लिखते हैं –

"लोहे के पेड़ हरे होंगे
तू गान प्रेम का गाता चल
नभ होगी यह मिट्टी जरूर
आँसू के कण बरसाता चल।"

यह दिनकर की कल्पनाशीलता ही है कि वे प्रेम के बल पर लोहे के पेड़ के हरे होने की बात करते हैं। दिनकर जी की समस्त रचनाओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी में उन काव्यों का रखा जा सकता है जो राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है और दूसरी श्रेणी में ऐसे काव्यों को रखा जा सकता है विश्व कल्याण की महत्व को दर्शाता है।

राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय :

"राजते दीप्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम्"

अर्थात् जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है वह राष्ट्र कहलाता है अथवा विविध वैभव से सुशोभित देश राष्ट्र होता है।

राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति 'राज' धातु से हुई है। संस्कृत के वृहत्कोष में राष्ट्र शब्द का अर्थ 'जनपद' दिया गया है। मानक हिन्दी कोष में राष्ट्र शब्द का अर्थ है राज्य, देश किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी भाषा एक-सी रीति-रिवाज़ तथा एक-सी विचारधारा होती है तथा किसी एक शासन में रहनेवाले सब लोगों का समूह किया गया है। नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में – "राष्ट्र केवल सीमाओं और जनसंख्या के समुच्चय का नाम नहीं वरन् उसके परिस्थितियों के एक विशिष्ट इतिहास का भी योग होता है। राष्ट्र एक व्यक्ति के सदृश्य ही है।"

मुख्य रूप से पृथ्वी उस पर रहनेवाली जनता और उसकी संस्कृति इन तीनों तत्वों से मिलकर ही राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र केवल मिट्टी, पर्वत या नदी आदि से नहीं बनता वरन् उसकी सत्ता तब सार्थक बन उभरती है जब उसमें जनता का निवास हो और जनता की सत्ता तब ही कायम होती है जब उसमें संस्कृति का अस्तित्व जागे और विकास हो अतः राष्ट्र को परिभाषित इस रूप में किया जा सकता है कि यह एक ऐसा जनसमुदाय है जो एक और जिसकी अपनी संस्कृति है अपनी सभ्यता है और एक सूत्र में बंधी है।

राष्ट्र शब्द से ही राष्ट्रीय व राष्ट्रीय से राष्ट्रीयता शब्द की संरचना हुई है। राष्ट्र विशेष गुणों या राष्ट्र के प्रति विशिष्ट प्रेम को राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्रीयता राष्ट्र की आत्म चेतना है।

आरंभ से ही दिनकर के काव्यों, कविताओँ में अपने देश के सुनहरे अतीत के प्रति मोह और ब्रिटिशकालीन भारत की दुर्व्यवस्था और परतंत्रता के प्रति क्षोभ और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। दिनकर जी की अपनी प्रसिद्ध कविता 'हिमालय' शीर्षक कविता में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी है और इस कविता के माध्यम से एक राष्ट्र के रूप में भारत की गतिशीलता, चंचलता, सक्रियता का गुणगान था। 'हिमालय' कविता भारत-चीन के युद्ध के समय दिनकर जी ने संसद भवन में गाया था। इस कविता ने शिथिल पड़े, वेदना में गुहार लगाने वाले युग-जीवन को अचानक मानो आलोक की रश्मियों का ताप मिला। कवि हिमालय का मानवीकरण कर हिमालय के माध्यम से भारतीयों को संबोधित करते हुए कहते हें कि –

"ओ, मौन तपस्वी-लीन यती।
पत भर को तो कर दृगोन्मेष।
रे ज्वालाओँ से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश
सुख-सिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिट-धार,
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार।"

दिनकर जी के द्वारा रचित 'प्रणभंग ' कविता महाभारत युद्ध में घटित श्री कृष्ण के शस्त्र ग्रहण की घटना पर आधारित है इसके अलावा मिट्टी की ओर, शहीद अशफाक के प्रति, शहीदों के नाम पर, तपस्या, शहीद आदि में उन्होंने स्वर्णिम अतीत के प्रति संवेदनशीलता दिखाई है। कहीं-कहीं तो इन कविताओँ में शोषक प्रवृत्ति रखने वाली सत्ता के प्रति उनकी धारदार रवैया परिलक्षित होती है –

"फावड़े और हलराजदण्ड बनने की है
धूसरता सोने से श्रृंगार सजती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है"

उनकी यह कविता 'कालजयी' कविताओँ में से एक थी। 1939-40 ई. के दौरान इन्होंने, तीन पुस्तकें रची थी – रसवन्ती, द्वन्द्व गीत और हुंकार। 'हुंकार' कविता ने उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्रदान की। उनके साहित्य के एक बड़े हिस्से में वीर-रस की प्रधानता रही, ऊपर से वे शोषितों-वंचितों के हक की आवाज़ बुलंद भी करते थे –

'हब्शी पढ़े' पाठ संस्कृति के खड़े गोलियों की छाया में यही
शान्ति, वे मौन रहें जब आग लगे उनकी काया में?
चूस रहे हो दनुज रक्त, पर हों मत दलित प्रबुद्ध कुमारी!
जय मानव की धरा साक्षिणी! जय विशाल अम्बर की जय हो।
जय गिरिराज! विंन्ध्यगिरी, जय-जय! हिंद महासागर की जय हो!
हटो व्योम के मेघ! पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
'दूध, दूध!' ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं!

('हुँकार' 1937 ई.)

रामधारी सिंह दिनकर को राष्ट्रकवि की उपाधि दी गई है। ऐसे में उनकी विचारधारा स्पष्ट है, लेकिन वे थोड़े परंपरावादी भी थे और थोड़े से क्रांतिकारी भी, उनकी कविता में राष्ट्रीयता का स्वर भी दिखता है, लेकिन गांधी और मार्क्स के बीच का द्वंद्व भी। दिनकर जी ने इसकी पुष्टि कुछ इस प्रकार की है –

"अच्छे लगते हैं मार्क्स, किंतु है अधिक प्रेम गांधी से
प्रिय है शीतल पवन, पर प्रेरणा लेता हूँ आंधी से।"

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के लिए उनके हृदय में अपार श्रद्धा व स्नेह है परन्तु गाँधीवाद विचाराधारा से उनकी सहमती व असहमती अपनी जगह है इसके लिए वे अपना विवेक इस्तेमाल करते हैं परन्तु इससे ऐसा नहीं कि उन्हें महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से कोई निराशा हो। उनके त्याग व बलिदान के वे गुणगान करते हुए अपनी भावनाएँ कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

"ली जाँच प्रेम ने बहुत मगर, बाबू तू सदा खरा उतरा,
शूली पर से भी बार-जार तू नूतन ज्योति-भरा उतरा।
प्रेमी की यह पहचान, परुषता को न जीभ पर लाते हैं,
दुनिया देती है जहर, किन्तु व सुधा छिड़कते जाते हैं।"

देश जब गरीबी भुखमरी और बेकारी से जूझ रहा था तब उन्होंने अपने काव्य 'भारत का यह रेशमी नगर' में इस परिस्थिति का यूँ वर्णन किया है –

"रेशमी कलम से भाग्य-लेख लिखनेवालों,
तुम भी अभाव से कभी ग्रस्त हो रोये हो?
बीमार किसी बच्चे की दवा जुटाने में,
तुम भी क्या घर भर पेट बाँध कर सोये हो।"

दिनकर जी ने ऐतिहासिक पात्रों को अपने काव्यों का आधार बना राष्ट्र की जनता में क्रांति न वीर रस का भाव भरा है जहाँ वे अतीत के खंडहरों में भटकते नज़र आते हैं वहीं वर्तमान की विषमता से घिरे जनता के मन में प्रतिशोध व प्रतिकार की उत्तेजना भरने का प्रयास भी करते हैं।

'कुरुक्षेत्र' की रचना करते हुए दिनकर जी ने लिखा है कि–"काव्य रचना में सर्वप्रथम मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और 'कलिंग विजय' नामक कविता लिखते –लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्या की जड़ हो। इसी क्रम में द्वापर की ओर देखते हुए युधिष्ठिर को देखा जो 'विजय' इस छोटे से शब्द को 'कुरुक्षेत्र' में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे किन्तु यही भीष्म के धर्म कथन में प्रश्न का दूसरा पक्ष भी विद्यमान था। आत्मा का संग्राम आत्मा से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है।"

"सत्य ही भगवान ने उस दिन कहा,
मुख्य है कर्त्ता-हृदय की भावना,
मुख्य है यह भाव, जीवन युद्ध में
भिन्न हम कितना रहे निज कर्म से।
औ समर तो और बही अपवाद है,
चाहता कोई नहीं इसको मगर,
जूझना पड़ता सभी को, शत्रु जब
आ गया हो द्वार पर ललकारता।"

स्वतंत्रता का संघर्षकाल अब समाप्त हुआ और दिनकर जी के काव्य में भी देश-काल वातावरण का प्रभाव पड़ा। अब उनके काव्य में भेदभाव, रूढ़ियाँ, परंपराएँ जो समाज के जड़ों को खोखला कररही थी, उसका प्रभाव साफ़ था। जब तक यह रूढ़ियाँ हट नही जाती तब तक राज्य का विकास, देश का विकास असंभव है ऐसा अनुमान उन्होंने लगाया। इस विसंगति को, भेदभाव को दिनकर जी ने अपने काव्य 'रश्मिरथी' द्वारा प्रस्तुत किया है। यहाँ कर्ण जो एक उपेक्षित पात्र रहा। इसके साथ हुआ भेदभाव एक आधार बना जिससे उन्होंने समाज में फैली ऐसी फुरीतियों का खण्डन कुछ इस प्रकार किया है –

"ऊँच-नीच का भेद न माने,
नदी श्रेष्ठ ज्ञानी है
दया-धर्म जिसमें हो
वही पूज्य प्राणी है।"

दिनकर ऐसे गिने-चुने कवियों में है जो राष्ट्र कवि होने की भूमिका बखूबी निभाते रहे। जब भारत-चीन युद्ध भारत को लज्जास्पद हार का सामना करना पड़ा तो दिनकर जी का काव्यात्मक हृदय वेदना से कराह उठा और उन्हें अपनी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' द्वारा अपने मनोवेदना का चित्र खींचने का अवसर मिला। जीवन के प्रत्येक क्षण में क्रांति का राग अलापने वाले दिनकर जी ने इस कविता में परशुराम की प्रतीक्षा की है।

एक समय था जब भारत को भीष्म, कर्ण, अर्जुन जैसे वीरों की आवश्यकता थी परन्तु अब उन्हें परशुराम की प्रतीक्षा है क्योंकि संकटकाल चहुँ ओर मंडरा रहा है उनका मानना था कि परुशुराम का फरसा ही उसे मिटाने में सफल होगा।

"दुर्दान्त दस्यु को सेल तूलते हैं हम;
यह की दंष्ट्रा से खेल झूलते हैं हम।
वैसे तो कोई बात नहीं कहने को,
हम टूट रहे केवल स्वतंत्र रहने को।
कुत्सित कलंक का बोध नहीं छोडेंगे,
हम बिना लिये प्रतिशौध नहीं छोड़ेंगे,
अरि का विरोध-अवरोध नहीं छोड़ेंगे,
जब तक जीवित है, क्रोध नहीं छोड़ेंगे।"

अंततः यह कहा जा सकता है कि दिनकर की काव्य शैली जन सामान्य में राट्रीयता की ज्योत जगाने में सक्षम है। उनकी सभी रचनाएँ क्रांति, वीरता, पराक्रम व राष्ट्रीयता का उद्घोष करती है।

आज के इस दौर में दिनकर जी की कविता उतनी ही प्रासंगिक लगती है जितनी की पहले, यही उनकी 'कालजयी' रचनाओँ की सबसे बड़ी सफलता है। देश का मार्ग प्रशस्त करना साहित्य का परम कर्तव्य है इस कर्तव्य का निर्वाहन दिनकर जी ने शत प्रति शत किया। आज की युवा पीढ़ी के लिए यह रचनाएँ प्रेरणा स्रोत है और आने वाले समय में भी रहैंगी।

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी सृजनशीलता में राष्ट्रीय भावना के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है- "संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मेरा मन भी चाहता था कि गर्जन-तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो।" राष्ट्रीयता उनके कृतित्व का ही नहीं वरन् व्यक्तित्व का भी अभिन्न अंग बन गई।

सन्दर्भ

1. राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्य कला – शिखर चन्द्र जैन
2. दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नये आयाम – डॉ. गोपाल राय सत्यकाम
3. हुँकार की भुमिका, क्रान्ति का कवि – रामवृक्ष बेनीपुर
4. कुरुक्षेत्र
5. दिनकर, प्रणभंग, शहीद अशफाक के प्रति
6. Kavita kosh.org
7. दिनकर सिंह दिनकर – ovingnext.blogspot.com
8. अपने समय का सूर्य दिनकर – hahekaj.blogspot.com
9. शताब्दी स्मृति अंक – रामधारी सिंह दिनकर

रश्मिरथी में राष्ट्रीय चेतना

* डॉ. मनीषा शर्मा

* सह-आचार्य हिंदी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी साहित्य के ऐसे ओजस्वी कवि हैं जिन्होंने अपनी कालजयी रचनाओं के माध्यम से न केवल परतंत्र भारत के तमसाछन्न आकाश को सांस्कृतिक जागरण व राष्ट्रीयता की आभा से प्रकाशमान किया है, वरन स्वातंत्र्योत्तर भारत की गरीब, दलित, निराश जनता को भी सशक्त बनाने और जागृत करने हेतु अपनी लेखनी से आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समानता न्याय की स्थापना के लिए क्रांति का शंखनाद कर अपने 'दिनकर' नाम को पुष्पित और पल्लवित किया।

23 सितम्बर 1908 को बिहार के मुंगेर जिले के सिमरियाँ गाँव के किसान परिवार में जन्म लेने वाले रामधारी सिंह दिनकर ने ठेठ देहाती जीवन के यथार्थ संघर्ष को जिया व देखा यही कारण रहा कि उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से छायावादी कल्पना लोक में विचरण करने वाली कविता को यथार्थ के धरातल पर लाकर तत्कालीन परिस्थितयों और समस्याओं का यथार्थ अंकन कर जनजागरण का कार्य किया।

साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत दिनकर ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे जिनके व्यक्तित्व पर तुलसी के रामचरितमानस, मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य, भगत सिंह और गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान, स्वामी सहजानंद सरस्वती के किसान आन्दोलन, भारतीय स्वंत्रता संग्राम, राजाराम मोहन राय, विवेकानंद, गाँधी जी के विचारों का इतना गहन प्रभाव पड़ा कि जहाँ उनकी 'रेणुका', 'हुंकार', सामधेनी आदि कविताएँ स्वंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरक बनी दूसरी ओर 'परशुराम की प्रतीक्षा' राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम का अप्रतिम उदाहरण बनी। उनका 'संस्कृति के चार अध्याय' विशाल ग्रन्थ भी उनकी अदभुत अन्वेषण शक्ति, विलक्षण गवेषणा क्षमता और भारतीय संस्कृति से प्रेम का सजीव प्रमाण है।

दिनकर ने भारत के स्वर्णिम अतीत के उदाहरणों द्वारा पराधीन भारत की निराश व शोषित जनता में नवीन चेतना का संचार किया। कवि की राष्ट्रीयता भारतीय संस्कृति की 'वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना के अनुरूप संकीर्णता से परे उदात्त भाव रखती है इसीलिए डॉ जे. आर. बोरसे ने लिखा है "देशभक्ति की सांस्कृतिक धारा अतीत के गौरवगान के माध्यम से प्रकट होती रही है अतीत के उज्ज्वल पृष्ट से निराशा, दैन्य परतंत्रता विजड़ित राष्ट्र को अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त होती है और वह परतंत्रता से स्वंत्रता की ओर, दीनता से संपन्नता की ओर, निराशा से आशा की और बढ़ता है इसीलिए प्राप्ति के पूर्वकाल में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का एक माध्यम अतीत की उज्जवलता रही।"[1]

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत के युद्ध के माध्यम से विश्वयुद्ध से ग्रस्त जनता के समक्ष मानवता व शांति का सन्देश देकर यह स्पष्ट किया कि अन्याय और असमानता युद्ध का कारण है जिसका परिणाम सदैव सर्वनाश होता है। इस रचना के माध्यम से कायर व परतंत्र भारतीय युवाओं में न्याय के लिए संघर्ष, नयी स्फूर्ति और चेतना का संचार किया।

दिनकर उस उदात्त राष्ट्रीय भावना के प्रतिनिधि कवि हैं जो व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जागरण के दृष्टिकोण से सशक्त राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं। वे अतीत के माध्यम से वर्तमान ही नहीं सुखद भविष्य के निर्माण का स्वप्न भी देखते हैं। जिस प्रकार

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने रामायणकालीन उपेक्षित पात्रों यथा कैकयी, उर्मिला को लेखनी में स्थान दिया उसी प्रकार महाभारत कालीन उपेक्षित पात्र भीष्म और कर्ण के चरित्र को राष्ट्र कवि दिनकर ने क्रमशः कुरुक्षेत्र और 'रश्मिरथी' में तत्कालीन प्रतिनिधियों के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया। "उनकी सुसंस्कृत समाज के निर्माण की राष्ट्रीय भावना महारथी कर्ण को लेकर आगे बढ़ी है दिनकर की रश्मियों का यही रथी सामाजिक जागरण का सन्देश लेकर उपस्थित हुआ है।"[2]

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज भी महाभारत काल के समान सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों से ग्रस्त था, ऊंच-नीच, जातिपाँति भेदभाव, छूआछूत, धार्मिक, आर्थिक शोषण, रूढ़ियों के बंधन से मुक्त करने के लिए रामधारी सिंह दिनकर ने 'रश्मिरथी' के कर्ण के माध्यम से मानवता और कर्म की प्रधानता का आह्वान किया है।

दिनकर ओज़ और तेज के ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने जन्मगत श्रेष्ठता को सिद्ध करने हेतु ही रश्मिरथी में कर्ण को दलित वर्ग के प्रतिनिधि और उद्धारक के रूप में प्रस्तुत किया।

दिनकर की सामाजिक व्यवस्था विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुरूप है - इसीलिए कर्ण कहता है

"क्षत्रिय वही भरी हो जिसमे निर्भयता की आग,
सब से श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है हो जिसमे तप त्याग"[3]

जातीयता पर कठोर प्रहार करते हुए दिनकर कवि ने जन्म के स्थान पर मानव मूल्य पर बल दिया है। रश्मिरथी का कथानक इसी प्रारंभिक ओज से आगे बढता है –

"ऊँच नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है"[4]

जब कर्ण को सूत पुत्र कह कर तिरस्कृत करने का प्रयत्न किया गया तब कर्ण के उदगार –

"पूछो मेरी जाति शक्ति हो तो मेरे भुजबल से
रवि समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से।"[5]

इस प्रकार कवि का यह स्वर जन-धन में साहस और शौर्य जागृत करने का सामर्थ्य रखता है और जाति के स्थान पर कर्म और पुरुषार्थ की प्रधानता पर बल देता है। क्योंकि जातिवाद के इस विष ने द्रोणाचार्य से एकलव्य का अंगूठा कटवाया और शौर्यवान सूत पुत्र कर्ण को शिक्षा से वंचित किया। आगे यही जातिगत कट्टरता परशुराम जैसे तपस्वी महापुरुष में भी दिखाई देती है जिसके कारण कर्ण को ब्राह्मण के वेश में शास्त्र विद्या ग्रहण करने को उपस्थित होना पड़ा और सत्य प्रकट होने पर शाप झेलना पड़ा। महाभारत काल के जातिवाद के इस विष बीज ने कालांतर में भारत को विदेशी सत्ता का गुलाम बना दिया इसी स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है

"धँस जाये यह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान
जाति गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान"[6]

रश्मिरथी खंडकाव्य में कर्ण के उदात्त, उज्ज्वल और कर्तव्यनिष्ठ चरित्र के माध्यम से भी कवि ने भारतीय युवाओं को अपनी मातृभूमि के लिए तन, मन, धन न्यौछावर करने की प्रेरणा दी है।

कर्ण ने अपनी संस्कृति की परंपरा को अपने जीवन में पूर्णतः निर्वहन किया। दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता रखने के कारण वह कृष्ण के समझाने पर भी दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ता है दूसरी ओर पांडवों को भी अपने अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता है इसीलिए कृष्ण से अपने जन्म का रहस्य प्रकट न करने की प्रार्थना कर्ण करता है यह त्याग का भाव कर्ण के उज्जवल चरित्र का प्रमाण है –

"साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे सारी संपत्ति मुझे देंगे
मैं भी न उसे रख पाउँगा दुर्योधन को दे जाऊंगा
पांडव वंचित रह जायेंगे, दुःख से न छूट वो पावेंगे"[7]

इस काव्य में कर्ण की उदारता और दान की प्रवृति भी पूंजीवादी समाज में व्याप्त शोषण की प्रवृति का समाधान प्रस्तुत कर रही है।

"गौ धरती, गज वाजि, अन्न धन वसन जहाँ जो पाया
दानवीर ने हृदय खोलकर उसको वहीँ लुटाया"[8]

दानवीर रश्मिरथी कर्ण के वीरोचित आत्म त्याग का उदाहरण विप्र भिक्षुक के रुप में आये इंद्र को कवच-कुण्डल का दान देना जो देशवासियों को अपने तुच्छ स्वार्थ को छोड़कर उदात्त दृष्टि को अपनाने की प्रेरणा देता है। दुर्योधन के द्वारा सार्वजनिक सूत पुत्र के रूप में अपमानित और तिरस्कृत कर्ण को अंग देश का राजा बनाकर दिए गए सम्मान और मित्रता का ऋण कर्ण युद्ध में कौरवों के पक्ष में युद्ध करके अपनी मृत्यु का सत्य जानकर भी चुकाता है, मित्रता के महत्त्व पर कृष्ण से कहता है –

"मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन?
धरती की तो है क्या बिसात? आ जाये अगर बैकुंठ हाथ
उसको भी न्यौछावर कर दूँ, कुरूपति के चरणों पर धर दूँ"[9]

रश्मिरथी कर्ण धर्म व सत्य के प्रति निष्ठावान ऐसा वीर पुरुषार्थी है जो युद्ध धर्म का पालन कर युद्ध लड़ता है

युद्धभूमि में अर्जुन का शत्रु अश्वसेन सर्प कर्ण की मदद करना चाहता है परन्तु कर्ण धर्म विरुद्ध आचरण स्वीकार नहीं करता है।

"राधेय जरा हँसकर बोला रे कुटिल बात क्या कहता है।
जय का समस्त साधन नर की, अपनी बाँहों में रहता है।
उस पर साँपों से मिलकर, मैं मनुज-मनुज से युद्ध करूँ।
जीवन भर जो निष्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ।"[10]

इस प्रकार रश्मिरथी कर्ण अपनी भुजाओं की शक्ति पर विश्वास करके कर्त्तव्य और धर्म का निर्वहन करता है। समाज के निर्धन, अनाथ और शोषित और दलित वर्ग के समर्थक के रूप में कर्ण सामाजिक समानता के लिए विद्रोह व क्रांति का उदघोष करता है।

यहाँ यह कथन दृष्टव्य है "मानवता के प्रति प्रतिबद्धता, दलितों-दुखियों की दुर्दशा पर उत्साहपूर्वक रोष, गहन भारत प्रेम और भारत धर्म की परिपूर्णतम अभिव्यक्ति उनके साहित्य के सुन्दरतम लक्षण है।"[11] इसीलिए दानवीर कर्ण अपने पास हर याचक की मनोकामना पूर्ण करता है और युद्ध क्षेत्र में माँ कुंती से कहता है –

"जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं
जो भी विहीन हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं
यह कर्ण उन्ही का सखा बंधु सहचर है
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है"[12]

कर्ण के इस उदात्त, उदार और त्यागमय चरित्र के कारण ही श्री कृष्ण ने स्वयं कर्ण के चरित्र के विषय में युधिष्ठिर से कहते हैं-

"मगर जो हो मनुज सुवरिष्ठ था वह,
धनुर्धर ही नहीं धर्मिष्ठ था वह
तपस्वी, सत्यवादी था, वृति था,
बड़ा ब्रह्मण्य था मन से यति था
हृदय का निष्कपट पवन क्रिया का,
दलित तारक, समुद्धारक त्रिया का
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर कर्ण का अद्भुत हृदय था"[13]

इस प्रकार 'रश्मिरथी' में सामाजिक जागरण के अनेक स्वर हैं जो न केवल भारतीय समाज को जातिवाद वर्गवाद की संकुचित भावना से ऊपर उठकर मानवतावाद के यथार्थवादी भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा देते हैं। इसमें भारतीय संस्कृति के मूल्यों के अनुरूप बिना किसी विद्वेष के समस्त विषमताओं से परे आर्थिक व सामाजिक समानता व न्याय स्थापित करने के सूत्र समाहित हैं, जो समाज कल्याण और क्षत्रिय धर्म दोनों को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त विवेचनोपरांत स्पष्ट है रामधारी सिंह दिनकर की अन्य रचनाओं के समान ही "रश्मिरथी" काव्य में राष्ट्रीयता की वह धारा प्रवाहित है जिसने न केवल परतंत्र भारत की सुप्त व निराश जनता को मातृभूमि की स्वंत्रता हेतु प्रेरित किया वरन समस्त भारत में व्यापत शोषण, अराजकता, अन्याय से पीड़ित दलित और शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का सन्देश दिया। वास्तव में कवि ने 'रश्मिरथी' कर्ण के चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मानव मूल्यों की पुनः स्थापना द्वारा समाज की सभी समस्यांओ का समाधान प्रस्तुत किया है जिसका महत्वपूर्ण बिंदु है जाति, वर्ग, धर्म की संकीर्णता से ऊपर उठकर मानव मात्र के कल्याण की भावना को अपनाना वे आज के भौतिकतावादी आत्मकेंद्रित मनुष्य को पशुता से ऊपर उठाकर मानवता के स्तर पर पहुंचा कर वास्तविक मानव बनाना चाहते हैं जिससे विश्वगुरु भारत का वर्तमान ही नहीं भविष्य भी उज्जवल और कीर्तिमान बन सके। इसीलिए आलोचक सुधांशु ने रश्मिरथी की समीक्षा पुस्तक में इस काव्य के महत्त्व को उदघाटित करते हुए लिखा है - "दिनकर युगधर्म का वह गायक है जिसके स्वर में युग-युग से पीड़ित और प्रताड़ित राष्ट्रीयता उग्र चेतना के साथ अनुप्राणित हो उठी है दिनकर को अपनी आकांक्षा के रूप में रश्मिरथी कर्ण जैसा नायक प्राप्त हुआ जो अपनी महत्ता से न केवल हमारे मानव को आप्लावित कर लेता है बल्कि हमारे समाज और साहित्य पर भी अमिट छाप डालता है"[14]

सन्दर्भ

1. पुस्तक स्वतंत्र्योत्तर हिंदी काव्य में महाभारत के पात्र - लेखक बोरसे डॉ जे. आर. - चंद्रलोक प्रकाशन कानपूर - पृष्ठ 361
2. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना – लेखिका सुनीति - पृष्ठ 105
3. रश्मिरथी - प्रथम सर्ग - दिनकर - पृष्ट 13
4. रश्मिरथी - प्रथम सर्ग - दिनकर - पृष्ट 13
5. रश्मिरथी - प्रथम सर्ग - दिनकर - पृष्ट 16
6. पुस्तक दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - लेखिका सुनीति - पृष्ठ 107
7. रश्मिरथी - रामधारी सिंह दिनकर - पृष्ठ 48

8. पुस्तक दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - लेखिका सुनीति - पृष्ठ 108
9. रश्मिरथी - तृतीय सर्ग - दिनकर - पृष्ठ 45
10. रश्मिरथी - सप्तम सर्ग - दिनकर - पृष्ठ 102
11. रश्मिरथी = संपादक केदार नाथ सिंह - पृष्ठ 4
12. रश्मिरथी - पंचम सर्ग - दिनकर - पृष्ठ 79
13. रश्मिरथी - दिनकर - पृष्ठ 116
14. पुस्तक दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - लेखिका सुनीति - पृष्ठ 112

रश्मिरथी में राष्ट्रीय चेतना

* राहुल कश्यप

* पीएच.डी हिंदी (शोधार्थी), दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय चेतना से हमारा अभिप्राय समाज की उन्नति से है और राष्ट्र की चेतना प्राण शक्ति समाज से है, प्रत्येक राष्ट्र का निर्माण उसकी जनता की उस आधारशिला का केंद्र बिंदु है, जिसमें एकता, समानता, स्वतंत्रता, निर्भयता, और बंधुत्व आदि मूल्यों का समन्वय हो। इन मूल्यों के द्वारा वह स्वयं अपने आंतरिक भावनाओं को जीवन के धरातल पर उकेर देते है। राष्ट्रीय चेतना एक अनुभूति है, जो हमारी संवेदना को आत्म प्रेरित करती है। इन संवेदनाओं का निर्माण राष्ट्र की समाज, संस्कृति, सभ्यता और जीवन मूल्यों के इतिहास बोध से होता है। राष्ट्र का इतिहास बोध मनुष्य के धर्म, कर्म, और श्रम से जुड़ा होता है। इन तीनों को आप ऐसे समझिए राष्ट्र के लिए मनुष्य का धर्म उसके प्रति ईमानदारी, विश्वास और बलिदान की भावना से है, जो प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्रीय धर्म है। कर्म से अभिप्राय अपने राष्ट्र में सहजता, समरसता और कर्तव्य पालन से है जिसे हर स्थिति में बनाए रखना ही मानवीय कर्म है, अंत में श्रम के द्वारा संघर्ष, परिश्रम और नव निर्माण में अपनी भूमिका प्रत्येक क्षेत्र में तत्पर होकर निभाना ही श्रमिक कर्तव्य है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में इन तीनों भावनाओं को अपने इतिहास के उन धुंधले पन्नों से ग्रहण करना चाहिए जो कहीं न कहीं दबा दिए गए है या हम भूल से गए है, उन्हें फिर से आत्मसात कर राष्ट्रीय चेतना की भावना को हमें स्वयं जागृत करना होगा। यही प्रयास दिनकर ने अपनी रचना 'रश्मिरथी' में किया है।

दिनकर की रचना रश्मिरथी भी राष्ट्रीय चेतना से अभिभूत कालजयी रचना है। उत्तर वैदिक युग से चली आ रही कुरीतियों और विसंगतियों जैसे मुद्दों पर अपने विरोधी नज़रिए से अघात करते हुए तत्कालीन समाज तक चली आ रही इन कुरीतियों को जड़ से समाप्त करने का प्रयत्न दिनकर अपनी रचना में करते है। यही कारण है की उत्तर वैदिक युग का वह चरित हजारों वर्षों से उपेक्षित और कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा। उस प्रतीक को पुरातन से नूतन के संदर्भ से जोड़कर दिनकर उन मानवीय गुणों के शोषण का ब्यौरा भी समाज के सामने रखना चाहते थे। कर्ण जैसे चरित्र का निर्माण करके वह राष्ट्र की उस चेतना की और भी लोगों का ध्यान ले जाना चाहते थे। जिन्हें मुख्य धारा से बाहर कर दिया गया, जिनके महत्व को बहुत कम आंका गया। दिनकर जी स्वयं रश्मिरथी की भूमिका में स्वीकार करते है:- "कर्ण के चरित को जैसा मैं समझ सका हूं, वह इस काव्य में ठीक से उतर आया है और उसके वर्णन के बहाने मैं अपने समय और समाज के विषय में जो कुछ कहना चाहता था उसके अवसर भी मुझे यथा स्थान मिल गए हैं। यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है, अतएव यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र-भारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित की ओर जाए जो हज़ारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मुंह प्रतीक बनकर खड़ा रहा है।"[1]

"कर्ण-चरित-उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे, मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके अपनी सामर्थ्य को सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता एवं वंश की देन है। कर्ण-चरित का

उद्धार एक तरह से नहीं मानवता की स्थापना का प्रयास है।''[2]

दिनकर द्वारा कर्ण चरित को प्रस्तुत करने की सामाजिक वैचारिकी का कारण सुस्पष्ट है।

सुरों वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम।
दैवायतं खुले जन्म: मदायत्तं तु पौरषम।।

(मैं चाहे सूत हूं या सूतपुत्र अथवा अन्य कोई। किसी कुल-विशेष में जन्म लेना तो ईश्वर पर निर्भर है, लेकिन मेरे पास जो पौरुष है उसे मैंने स्वयं प्राप्त किया है)।

रश्मिरथी जैसी दुर्लभ रचना का निर्माण कोई आकस्मिक घटना नहीं है । वह राष्ट्रीय चेतना की उस अभिव्यक्ति के चिंतन धारा का ध्येय हैं। जिस समाज में मानवीय संवेदनाओं को कुंठित कर दिया है। उन प्रलोभन को नष्ट करना है , जो राष्ट्र की नव बौद्धिक चेतना का दमन करते है। उस दमनकारी समाज को रश्मिरथी के माध्यम से दिनकर अपने नवीकरण विचारों के द्वारा समाज का ध्यान उन विसंगतियों और विडंबनाओं की और केंद्रित करने का प्रयास करते है। एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करते है, जो तत्कालीन समाज को रास्ता दिखा सके। रश्मिरथी का कर्ण उसी का प्रतीक है, इन पंक्तियों के माध्यम से उसके चरित्र को समझ सकते है, कृष्णा कहते है:-

"मगर, जो हो, मनुज सुवरिष्ठ था वह।
धनुर्धर ही नहीं, धर्मिष्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था,
बड़ा ब्रह्मण्य था, मन से यती था।
"हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित-तारक समुद्धारक त्रिया का।
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

यह वह समय था जब देश को स्वतंत्र हुआ हुए थोड़ा ही समय हुआ था देश में कई विसंगतियां विद्यमान थी जिसमें अराजकता, जाति-विभेद, असमानता तथा नारी शोषण आदि प्रमुख होने के साथ-साथ मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति का भी दौर था। मनुष्य ने जो भी स्वतंत्रता से पूर्व तथा उसके पश्चात की विभीषिका और विसंगतियों को देखा उससे मनुष्य का हृदय फटता था। बस तसल्ली थी तो इस बात की अंग्रेज़ी हुकूमत समाप्त हो गई और अब भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग देश को विकास, निर्माण व प्रगति के पथ पर ले जाएंगे। भारतीय संविधान लागू हो गया था प्रत्येक व्यक्ति के मन में नई चेतना उत्पन्न होने लगी थी लेकिन फिर भी कुछ पुरापंथी और रूढ़िवादी लोग इन नई-नई चिंतन धारा का विरोध भी कर रहे थे। तब दिनकर रश्मिरथी में कर्ण के माध्यम से ऐसे बुराइयों का विरोध कर रहे थे:-

उच्च नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।

रश्मिरथी को राष्ट्रीय चेतना का सहज स्वाभाविक एवं प्रभारी उद्घोष कहा जा सकता है। दिनकर जी ने समाज में चली आ रही जातीय असमानता पर तीखा प्रहार किया। 1950 में संविधान लागू होने के बाद कई मुद्दों और समस्याओं पर अंकुश लगाने का कार्य हमारे विद्वान, नेताओं आदि ने सामूहिक भाषण, जन सभा और सबसे प्रमुख भारतीय संविधान के माध्यम से समानता, एकता, स्वतंत्रता जैसी समस्याओं पर अंकुश लगाने का कार्य किया, साथ ही राष्ट्रीय विकास के लिए सभी को साथ चलकर भारतीय राष्ट्रीय चेतना के नव निर्माण में सहयोग करने का आह्वान किया। लेकिन इन सबके बावजूद भी कुलीन वर्ग, उच्च जाति में पलने वाले लोगों ने अपना योगदान केवल नामात्र या बस दिखावे के लिए किया। विजय बहादुर सिंह अपने लेख सामाजिक न्याय का प्रश्न और पुरुषार्थता में लिखते है "कुल और जाति की दृष्टि से हीन समझे जाने वाले इन चरित्रों में जैसी पौरुष विशिष्टता और असाधारणता है, वैसी तो श्रेष्ठ कुल और जाति के माने जाने वालों में भी नहीं पाई जाती।"[3]

दिनकर जैसे आदरणीय विद्वान अपनी कलम से इन विडंबनाओं पर लेखनी चला रहे थे रश्मिरथी में उस समय के समानता की भावना को गुण के आधार पर प्राप्त कीर्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं:-

तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी
जाति-गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी,
ज्ञान-ध्यान शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक अभ्यास,
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास

इस संसार में कई व्यक्ति ऐसे है जो जन्मजात से ही स्वयं प्रतिभावान होते है और कुछ व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के दम पर अपनी पहचान बनाते है। लेकिन ज्यादातर लोगों को ख्याति केवल अपने कुल, जाति और वंश के आधार पर प्राप्त हो जाती है। उसकी गुणगान गाथा करते सर्वेश्रेष्ठ होने की भावना से वे सदैव ओत-प्रोत रहते है। अपनी पुरुष हीनता का क्षण मात्र बोध भी इनको दिखाई नहीं देता।

अपनी उच्च श्रेणी के जन्म का नशा इनके संकुचित मस्तिष्क में सदैव रहता है। यह कहा तक ठीक है की एक व्यक्ति निरंतर जीवन में संघर्ष और त्याग आदि के आधार पर सम्मान और ख्याति प्राप्त करें, वहीं दूसरी ओर नशे में चूर होकर मदहोश चले जानें वाले उच्च-कुल-वंश के आधार पर सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले। विजय बहादुर सिंह अपने लेख सामाजिक न्याय का प्रश्न और पुरुषार्थता में लिखते है। "दुनिया में ढेरों लोग हैं जो पैदा तो बड़े खानदान ओ और ऊंची जातियों में होते हैं किंतु प्रायः पौरुष सुनने होता सुनने हुआ करते हैं बाबा साहब अंबेडकर के जमाने में भी ऊंची जातियों के ऐसे पुरुष इन लोगों की काफी बड़ी संख्या थी अंबेडकर दलित माने जाने वाली जाति में पैदा हुए थे पर आधुनिक भारत के संविधान निर्माता में शामिल हैं। समाज और लोक में प्रतिष्ठा का आधार क्या होना चाहिए? व्यक्ति का पौरुष या उसकी जातीय श्रेष्ठता और पौरुष शून्यता?" "[4]

इसपर विचार करते हुए दिनकर हमेशा पौरुष, गुण और संघर्ष के साथ खड़े दिखाई देते है। वे कर्ण के द्वारा इन व्याप्त कुरुतियों पर प्रहार करते है:-

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते है जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके।
हीन मूल की और देख जग गलत कहें या ठीक,
वीर खींचकर ही रहते है इतिहासों में लीक।
"हाय, कर्ण, तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुंडल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ।
धंस वह देश अतल में, गुण की जहां नहीं पहचान,
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहां सुजान।

दिनकर जी ने तत्कालीन समाज की उन कुरीतियों को भी आड़े हाथ लिया है जो बनी बनाई परिपाटी का अनुसरण करते चलते हैं अपने जाति विशेष के महत्व का गुणगान किया करते हैं। कि हमें इस संसार में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी-ध्यानी अन्य कोई नहीं। जो उच्च जाति का है वही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। कोई भी नीच जाति का व्यक्ति ज्ञान, शस्त्र और आर्थिक स्रोत की जानकारी तक प्राप्त नहीं कर सकता। भारतीय समाज में जो धार्मिक तथा जातीय-विभेद चल रहा था उस पर भी दिनकर जी की नजर थी कि मानव अपनी असमर्थता को किस तरह से जाति की आड़ लेकर बच निकलता है और समानता का अनादर कर केवल जाति की महत्ता को संबोधित करता है लेकिन दिनकर केवल अपने शक्ति बल से पाने वाले को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं बाकी सब निरर्थक है। इन सभी तानो-बनो को तोड़ते हुए दिनकर जी संघर्ष और पौरुष को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कर्ण के मुख से कहलवाते है:-

"मस्तक ऊंचा किए, जाति का नाम लिए चलते हो,
पर, अधर्ममय शोषण के बाल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर-थर कांपते तुम्हारे प्राण,
छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान।
जाति-जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषण्ड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदण्ड।
"मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते है सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर, क्रूर।

भारतीय इतिहास में क्या केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय या उच्च कुल के लोगों ने ही अपना योगदान दिया है, क्या वह भूल चुके हैं प्रत्येक मनुष्य जाति ने अपने संघर्ष से राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ बनाने में योगदान दिया, आंदोलन और क्रांति में प्रत्येक वर्ग ने अपना लहू बहाया है। लेकिन कुलीन वर्ग की आंखों के ऊपर उच्च श्रेणी की मोह-माया का चश्मा चढ़ा हुआ है, वे यह भूल जाते है की राष्ट्र को मुक्त कराने और उसका फिर से नव-निर्माण करने में प्रत्येक वर्ग, जाति और धर्म के लोगों ने सहयोग किया है। क्या उच्च श्रेणी में पैदा न होने से उनके इस महत्व का कम कर दिया जाएगा या फिर नकार दिया जाएगा। दिनकर ने रश्मिरथी में इसी महत्व को स्थापित करते हुए बलिदान, संघर्ष और त्याग आदि उनके महत्व को प्रदर्शित करते हुए, जातीय सर्वे श्रेष्ठता बनने वाले ठेकदारों के मुंह पर इन पंक्तियों के माध्यम से जोरदार चांटा मारते हैं:-

"किया किसका नहीं कल्याण उसने?
दिए क्या-क्या न छिपकर दान उसने?
जगत के हेतु ही सर्वस्व खोकर।
मरा वह आज रण में नि: स्व होकर।
"नहीं पूछता है कोई, तुम व्रती, वीर या दानी हो?
सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?
मगर, मनुज क्या करें? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो यह बात नहीं।

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे सत्ता लोलुप वर्ग के लोग भी रहते है जो बस अपने ही अधिकारों का दबदबा रखना चाहते हैं ताकि रूढ़िवादिता का निर्माण निरंतर जारी रहें, बेशक यह उनकी मानसिक तनाव, संकीर्ण सोच की उपज

हो, फिर भी व्यक्ति अपने निरंतर प्रयास और एकाग्रता से बड़े से बड़े कार्य को सफल कर सकता है।

निष्कर्ष:-

" समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत से ज्योति का जेता उठा है!"

इन पंक्तियों के माध्यम से दिनकर ने अंत में कृष्ण के मुख से कर्ण के व्यक्तित्व को उस मनुष्यता का नायक बताया है। जिसके सहयोग से राष्ट्रीय चेतना में वृद्धि और समृद्धि होगी। कर्ण की तुलना भीष्म, द्रोण और मानवता का निर्माण धारक जैसे शब्दों से की जाती है उसका व्यक्तित्व भक्ति, श्रद्धा, और सम्मान का परिचायक है। दिनकर ने कर्ण के द्वारा राष्ट्रीय चेतना के प्रखर बिंदुओं पर लेखनी चलाई है की समकालीन भारतीय समाज, आज फिर वंश, कुल और जातिवाद के चुंगल में फंस और उलझ चुका है। सत्ता राजनीति में इसके कई उदाहरण देखे जा सकते है। आज के समय में भी कर्ण जैसे विद्वान, आत्मसंघर्षी और गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति हैं, लेकिन ऐसे जनों का लाभ यह भारतीय समाज नहीं ही उठा पा रहा है। हमें समय रहते ऐसे जन समुदाय को अपनाना होगा साथ ही कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा, तभी राष्ट्रीय चेतना को उभारने में हम सब अपना सहयोग दे पाएंगे। ऐसी स्थिति मे दिनकर की रश्मिरथी काव्य हमें एक बार फिर यह सोचने का अवसर प्रदान करता है की हम व्यक्ति के गुणों और पुरषार्थ को महत्व दे ना की उसकी जाति और वंश को। इस दृष्टि से दिनकर का काव्य रश्मिरथी प्रासंगिक भी है, महत्वपूर्ण भी।

सन्दर्भ

1. कुमार, दिनेश (स.) रश्मिरथी एक पुनः पाठ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृष्ठ संख्या- 115
2. वही, पृष्ठ संख्या- 115
3. वही, पृष्ठ संख्या- 110
4. वही, पृष्ठ संख्या- 109

रामधारी सिह दिनकर के रचनाओ में राष्ट्र भावना

* राजश्री

* पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय (हिंदी विभाग)

पल-पल परिवर्तित होने वाले प्रकृति के इस प्रांगण में कभी-कभी ही ऐसी प्रतिभा आविर्भूत होती है, जो सहज ही उपमित नहीं की जा सकती। ओज और पौरूष के अमर गायक रामधारी सिंह ' दिनकर ' विद्या की देवी माँ सरस्वती के एक ऐसे ही यरद् पुत्र का नाम है, जिन्होंने अन्याय, अत्याचार, दासता और शोषण के विरोध में खुलकर विद्रोह विगुल फूंकने का काम किया है।

भारतीय हिन्दी साहित्य में युग - गायक स्वरूप प्रतिष्ठित रामधारी सिंह ' दिनकर ' का जन्म 23 दिसम्बर , 1908 को बेगूसराय जिलान्तर्गत सिमरिया नामक ग्राम में हुआ है। इनका जन्म एक साधारण गृहस्थ परिवार में हुआ था।

आपको तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व एवं काव्य-तेजस्विता अतुल्य है। इन्होंने अपनी काव्य-सर्जनाओं में सबसे बड़ा गुण ओज और वीर रस की प्रधानता के रूप में कायम किया है। पराधीनता का दंश झेल रहे , सुषुप्त भारतवासियों को ' दिनकर ' के ओजस्वी व्यक्तित्व ने अपनी ओजपूर्ण वाणी के द्वारा झकझोरा है, जगाया है और उत्तेजित करने का काम किया है

"सुनूँ सिंधु क्या गर्जन तुम्हारा
स्वयं युग धर्म का हुँकार हूँ मैं ।"

कविवर ' दिनकर ' ने काव्य-कृति के रूप में 'प्रण– भंग ', ' हुंकार ', ' रसवंती ', ' द्वन्द्वगीत ', ' कुरुक्षेत्र ', ' सामधेनी ', ' बापू ', ' रश्मिरथी ', ' नीलकुसुम ', ' नए सुभाषित ', ' सीपी और शंख ',' उर्वशी ', ' परशुराम की प्रतीक्षा ', ' कोयला और कवित्व ', ' रेणुका ' और 'आत्मा की आँखें नामक काव्य सर्जना की । राष्ट्रीयता , राष्ट्रभक्ति , देशभक्ति और श्रृंगार इनके काव्य के प्रधान स्वर हैं। इतने पर भी इनका श्रृंगार मर्यादित है। इनकी रचना भावपूर्ण है साथ ही उसमें बुद्धित्व का पूर्णतः समाहार प्रतीत होता है। इन्हीं सब कारणों से इनकी साहित्यिक यात्रा सदैव परिवर्तित रही है।

नव्य छायावादी और प्रगतिवादियों के सम्पर्क में रहकर भी कविवर ' दिनकर ' खुद की अनोखी पहचान रखते हैं।

सर्वप्रिय साहित्यकार ' दिनकरजी ' आलोचना और संवेदना के धनी रहे। साथ ही निबंध के क्षेत्र में भी आपने अपनी लेखनी का प्रयोग किया। ' मिट्टी की ओर ', ' अर्द्ध-नारीश्वर ', ' वेणुवन ', ' रेती के फूल ', ' काव्य को भूमिका ', ' पंत , प्रसाद और मैथिलीशरणगुप्त ' तथा ' शुद्ध कविता की खोज ' आदि प्रामाणिक पुस्तकें हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। भारत के गरिमामयी इतिहास और संस्कृत के विविध आयामों से ये पूर्ण परिचित थे। इनका इसी परिचय के साकार रूप हैं, ' संस्कृति के चार अध्याय ' तथा ' हमारी सांस्कृतिक एकता ' । रचना , भावना , इतिहास , संस्कृति और संस्मरण का विशिष्ट योग कविवर ' दिनकर ' के व्यक्तित्व में पूर्णतः समाहित हो गया था। लोकप्रिय कवि 'दिनकर' अपने मूल रूप में भारतीय राष्ट्र और संस्कृतिक लेखक थे। लोकदेव नेहरू: संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ तथा उजली आग, संस्मरण और साहित्य का एक साथ स्पर्श करते हैं।

कवि ' दिनकर ' का संवेदनशील हृदय अंग्रेजी सरकार के अन्याय और शोषण सम्बन्धी गर्जन और तर्जन को ललकार रहा है। ' दिनकरजी ' की वाणी में समुद्र की लहरों का गर्जन से अधिक आक्रोश और बल प्रताप है

दिनकर का युग

दिनकर जी ने जिस युग में लिखना शुरू किया था, उसके बारे में विचार करना जरूरी है। वह समय कैसा था?

अंग्रेजों की गुलामी खत्म करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा संघर्ष नए धरातल पर पहुंच गया था। कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य की घोषणा की थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन ने पूरे देश को झकझोर दिया था। इसके साथ ही और भी घटनाएं थी जो संपूर्ण देश के मानस को आंदोलित कर रहीं थीं आंदोलन की वापसी , गांधी-इरविन समझौता , मेरठ और भगत सिंह तथा उनके साथियों को फांसी । एक तरफ जहाँ महात्मा गांधी सर्वमान्य नेता बन चुके थे । यहीं दूसरी तरफ, स्वाधीनता आंदोलन में युवा शक्ति अपने ढंग से हस्तक्षेप कर रही थी। यही समय था जब भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई और पढ़े लिखे लोगों साम्यवादी विचार लोकप्रिय होने लगे। किसान सभा की स्थापना और ठीक उसके समानांतर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना जैसी महत्वपूर्ण घटनाएं घटी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बोल्शेविक क्रांति की घटना एकदम ताज़ा थी और समाजवादी सोवियत संघ नई आशा बनकर उभरा था। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक का यह कालखंड अत्यंत घटनापूर्ण था। इसमें एक ओर जहाँ मानवता की मुक्ति के लिए आशाजनक संकेत मिल रहे थे और दिशाएं खुलती दिखलाई पड़ रही थी, वही दूसरी और फासिज्म जन्म ले रहा था और द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी भी चल रही थी ।

दिनेकर की सबसे बड़ी विशेषता है - अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरुकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के ही रूप में नहीं , उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है. दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिन्तन, परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया , साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा । यह विकास तभी सम्भव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। ' कुरुक्षेत्र ' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तुस्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुन्दर समन्वय हुआ है :

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मन्त्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात
संगर में आगे चल के।

क्रान्तिवादी को जिन-जिन हृदय-मन्थनों से गुजरना होता है , ' दिनकर ' की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है। क्रान्तिकारियों के भी दिल होता है, दिल में प्रेम नामक बिना व्याख्या की एक अनुभूति होती है; वह भी किसी को चाहता है, किसी पर अपने को न्योछावर करना चाहता है; बसन्त उसके दिल में भी गुदगुदी लाता है, बरसात उसके हृदयाकाश में भी कभी रिमझिम कर उठती है, सौन्दर्य चुम्बक की तरह उसकी आँखों को भी पकड़ लेता है। लेकिन, वह करे तो क्या ? उसी समय उनके कानों में कुछ दूसरी ही रागिनी बज उठती है , उसकी आँखें कुछ दूसरे ही दृश्य देखने लगती हैं -

रणित विषम रागिनी मरण की आज विकट हिंसा-उत्सव में,
दबे हुए अभिशाप मनुज के लगे उदित होने फिर भव में ;
शोणित से रँग रही शुभ्र पट संस्कृति निठुर लिए करवालें ,
जला रही निज सिंह-पौर पर दलित-दीन की अस्थि-मशालें

औ , उसे मालूम होता है, कोई शक्ति उसे बुला रही है- जगा रही है। यह कौन? यह तो वही है। वह झिझक उठता है, अरी,

यह कैसा आह्वान !
समय-असमय का तनिक न ध्यान।
तुम्हारी भरी सृष्टि के बीच
एक क्या तरल अग्नि ही पेय?
सुधा मधु का अक्षय भांडार
एक मेरे ही हेतु अदेय ?
' उठो ', सुन उठू, हुई क्या देवि,
नींद भी अनुचर का अपराध ?
'मरो', सुन मरूँ, नहीं क्या शेष
अभी दो-दिन जीने की साध ?

लेकिन, दूसरे ही क्षण, वह प्रकृतिस्थ होता है। अरे, उसका जीवन तो समर्पित है। उस पर उसका क्या अधिकार? और, मानो वह गरज उठता है -

फेंकता हूँ लो, तोड़-मरोड़ अरी निष्ठुरे बीन के तार,
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख फूँकता हूँ भैरव हुंकार।
नहीं जीते जी सकता देख विश्व में झुका तुम्हारा भाल,
वेदना-मधु का भी कर पान आज उगलूँगा गरल कराल।

मैथिलीशरण गुप्त के बाद दिनकर जी को ही राष्ट्रकवि कहकर पुकारा गया। उन्होंने आज़ादी के आंदोलन के दौरान लिखना शुरू किया था और अपने चारों ओर की स्थितियाँ उन पर जबर्दस्त असर डाल रही थीं। अपनी चुनी हुई कविताओं के संकलन ' चक्रवाल ' में उन्होंने लिखा है, " मैं... वैसा कवि अवश्य बनना चाहता था, जिसकी प्रेरणा उसके सामाजिक कर्तव्य ज्ञान से आती है, किंतु विप्लव और राष्ट्रीयता का वरण मेरा उद्देश्य न था। " बारदोली सत्याग्रह के दौरान उनका पहला लघु गीत-संग्रह 'बारदोली विजय प्रकाशित हुआ, जिसमें राष्ट्रीयता गीत थे। फिर भी उनके अनुसार उनके पहले खंड-काव्य (प्रण-भंग) को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि राष्ट्रीयता मेरी कविताओं का प्रधान गुण है। 1939-1940 ई0 के दौरान उनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई 'रसवंती' 'द्वन्द्व गीत' और 'हुंकार। वे बताते हैं कि हुंकार के प्रकाशन से उन्हें यश मिला, जिसमें राष्ट्रीयता के भावों की जोरदार अभिव्यक्ति थी। इसके बारे में वे स्पष्ट करते हैं राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया। अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी में देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज़ आती , फॉसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज सुनाई देती जो है।

राष्ट्रीयता अपने आप में एक उदात्त भावना है. लेकिन जब वह अहंकार और श्रेष्ठल के भाव से मुक्त हो जाए तो विश्व बंधुत्व की उच्चता प्राप्त कर लेती है। सौभाग्य से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन्मी राष्ट्रीयता की भावना में ये गुण थे।

दिनकर जी की राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कविताएँ इसी भाव से युक्त हैं। वे लिखते हैं कि कवि होने की सामर्थ्य 'मुझमें भारतवर्ष का ध्यान करने से जाग्रत हुई, यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आफुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई। ' रेणुका ' और ' हुंकार ' की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर अत्यंत प्रखर है। प्रायः इन कविताओं में आह्वान , उद्बोधन , पुकार , बुलाव ये सब देखने को मिलते हैं।

मंगल आह्वान' की ये पंक्तियां देखिए

गत विभूति, भावी की आशा
ले युगधर्म पुकार उठे,
सिंहों की घन-अन्ध गुहा में जागृति की हुंकार उठे।
जिनका लुटा सुहाग, हृदय में
उनके दारूण हूक उठे ,
चीखूँ यों कि याद कर ऋतुपति
की कोयल रो कूक उठे।

आगे की पंक्तियाँ हैं :

प्रियदर्शन इतिहास कंठ में
आज ध्वनित हो काव्य बने
वर्तमान की चित्र पटी पर
भूतकाल संभाव्य बने।

'हिमालय' दिनकर जी की अत्यंत प्रसिद्ध कविता है। इसमें भी भारतीयों के मन में बसे हुए गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति है। हिमालय जैसे विशाल भारतीय जन-मानस का एक उदात्त प्रतीक बन जाता है, जो, मौन त्याग कर चेतना हो जाए तो अन्याय की कड़ियां टूट जाएगी। उसी प्रकार बुद्धदेव भी एक क्रांतिकारी के रूप में याद किए जाते हैं। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन विदेशी शासन से मुक्ति के लिए तो था ही, वह स्वय भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को नष्ट करने का विराट समाज-सुधार का आंदोलन था। जाति प्रथा के कारण भारतीय समाज में जो जड़ता आ गई थी, उसे नष्ट करना एक प्रमुख कर्तव्य था। हुआछूत के विरूद्ध गांधी जी ने ज़ोरदार आवाज उठाई। जिन्हें अछूत माना जाता था , उन्हें हरिजन की उपाधि दी। मंदिरों के दरवाज़े उनके लिए बंद थे। गांधी जी ने हरिजनों के सामाजिक सम्मान को हासिल करने के क्रम में मंदिर प्रवेश का आंदोलन चलाया। इसी क्रम में हिंदुओं के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल वैद्यनाथ धाम (देवघर) में मंदिर प्रवेश के प्रयास के दौरान पंडों ने उन पर हमला किया। दिनकर जी इस घटना से क्षुब्ध हो उठे

आह! सभ्यता के प्रांगण में आज गरल वर्षण कैसा !
घृझा सिखा निर्वाण दिलानेवाला यह दर्शन-कैसा !
स्मृतियों का अंधेर! शास्त्र का दम्म! तर्क का छल कैसा !
दीन-दुखी असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा!

व्याकुलता से भरा हुआ यह स्वर आगे और तीखा हो जाता है।

मनुज-मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए ,
कैसे बचें दीन? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए।
अनाचार की तीव्र ऑच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं।

ये बुद्ध को ' विप्लव के वाक् ' और अतीत के क्रांति -गान कहकर संबोधित करते हैं। इन पंक्तियों में भी देखा जा सकता है कि यहाँ राष्ट्रीयता की भावना में आधुनिक चेतना का साग्रह प्रवेश है। भारतीय समाज की जड़ता को स्वीकार नहीं किया गया है।

1945 में दिल्ली और मास्को शीर्षक कविता में जैसे कम्युनिस्टों करते हुए उन्हें अपनी प्राथमिकता दुरूस्त करने को कहा : -

ओ समता के वीर सिपाही,
कहो, सामने कौन अढ़ी है ?
बल से दिए पहाड़ देश की
छाती पर यह कौन पढ़ी है?
यह है पस्तंत्रता देश की
सधिर देश का पीने वाली
मानवता कहता तू जिसको
उसे चबाकर जीने वाली।
यह पहाड़ के नीचे पिसता
हुआ मनुज क्या प्रेम नहीं है ?
इसका मुक्ति प्रयास स्वयं ही
क्या उज्ज्वलतम श्रेय नहीं है?

उनके सामने यह बात एकदम साफ थी कि भारत की तह करोड़ों की मुक्ति का मार्ग खुल सकता है : -

दिल्ली के नीचे मर्दित अभियान नहीं केवल है
दबा हुआ शत-लक्ष नरों का अन्न – वस्त्र , धन – बल है।
दबी हुई इसके नीचे भारत की लाली भवानी ,
जो तोड़े यह दुर्ग वही है समता का अभिवानी।

दिनकर जी की राष्ट्रवादिता अंधी नहीं, वह गहराई से मानव-मुक्ति के मूल्य से जुड़ी है ।1963 में लिखी अपनी कविता ' किसको नमन करूँ ' मे वे भारतीय राष्ट्र की कल्पना करते हुए उसे अत्यंत विस्तृत भावना में बदल देते हैं।

भारत नहीं स्थान का वाचक ,गुण विशेष नर का है
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ एकता अखंडित , जहाँ प्रेम का स्वर है ?
देश-देश में वह भारत जीवित भास्वर है।

दिनकर की मात्र राष्ट्रवादी उद्घोष करने वाले पर देश प्रेम व्यंजक कविताएँ ही नहीं लिखी, भारतीय राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा की खोज करते हुए ' संस्कृति के चार अध्याय ' जैसा ग्रंथ भी लिखा । भावनात्मक विस्फोट उनकी ' विषथमा ' शीर्षक कविता में बड़े ओजस्वी ढंग से मिलता है। इस कविता में शुरू से अंत तक एक भयानक विनाश का नृत्य होता है।

पायल की पहली झमक , सृष्टि में कोलाहल छा जाता है।
पढ़ते जिस और चरण मेरे भूगोल उधर दब जाता है।
लहराती लपट दिशाओं में खलल खगोल अकुलाता है।
परकटे बिग-सा निरवलम्ब गिर स्वर्ग-नरक जल जाता है।
गिरते दिहाड़कर शैल-श्रृंग मैजिर फेरी चितवन।

इस क्रांति का सामाजिक चरित्र आगे की पंक्तियों से एकदम साफ हो जाता है।

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र , भूखे बालक अकुलाते हैं ,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जोड़ो की रात बिताते है।
युवती के लज्जा-वसन देब ब्याज का है ,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं ,
पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमंत्रण।

जिस समय ये कविताएँ लिखी जा रही थी. एक विवाद संघर्ष में हिंसा के प्रयोग को लेकर भी चल रहा था। 1941 से 1946 के बीच दिनकर जी ने अपना प्रसिद्ध काव्य ' कुरुक्षेत्र ' लिखा । यह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय भी था लेकिन जैसा स्वय दिनकर जी ने स्पष्ट किया है, 'कुरुक्षेत्र ' में विश्व शांति की स्थापना की चिंता कम, अपने देशवासियों की विचार-दिशा बदलने की भावना ज्यादा है। यह इस विचार से प्रेरित था कि 'अहिंसा अगर परम धर्म है तो हिंसा को आपद धर्म मानना ही पड़ेगा। कवि के अनुसार कुरुक्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रतिनिधित्व युधिष्ठिर करते हैं , किंतु जो नवयुवक उनके अहिंसा के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते, उनके प्रतीक भीष्म है । हिंसा और अहिंसा युद्ध और शांति का ..... इसमें महाभारत की कथा के सहारे व्यक्त किया गया है। भीष्म का यह प्रश्न दिनकर का भी प्रश्न है।

समर निन्ध है धर्मराज पर कहो शांति वह क्या है ,
जो अनीति पर स्थित होकर भी बनी हुई सरला है ?

युद्ध जिसमें हिंसा अनिवार्य है तभी होता है जब अन्याय पर आधारित शांति न्याय की मांग को अस्वीकार कर देती है।

शांति खोलकर खड्ग क्रांति का जब वर्जन करती है ,
तभी जान लो, किसी समर का वह सर्जन करती है।
शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो
,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो , नहीं किसी को कम हो।

बाद की पंक्तियाँ हिंदी क्षेत्र में जितनी लोकप्रिय हुई है, उसी से पता चलता है कि साम्यवादी समाज की रचना से प्रेरित दिनकर जी जैसे कवियों का राष्ट्रवाद कोरा चीत्कार-फूत्कार नहीं था। ऐसा नहीं है कि स्वाधीनता पाने के बाद उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखना बंद कर दिया। पर उनका प्रखर और क्रुद्ध राष्ट्रवादी स्वर जिस प्रकार ' परशुराम की प्रतीक्षा ' में प्रकट हुआ, वैसा और कहीं नहीं। भारत पर चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया में लिखे गए इस वाक्य की हर पंक्ति में जैसे परशुराम के कुठार वाली धार है। इसमें भारत को किसी भी आक्रमण का उत्तर देने में सक्षम देखने की आकांक्षा फूटी पड़ती है। उसे एक बलवान राष्ट्र के रूप में विकसित होने का आह्वान किया गया है

वे देश शांति के सबसे शत्रु प्रबल है,
जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं,
हैं जिनके उदर विशाल, बाँह छोटी है,
भोथरे दाँत, पर जीभ बहुत मोटी है।
औरों के पाले जो अलज्ज पलते हैं,
अथवा शेरों पर लदे हुए चालते हैं।

दिनकर जी की इस प्रकार की कविताएँ अधिक लोकप्रिय हुई यह स्वाभाविक ही था। इनमें गर्जन तर्जन है , ओजस्वी वक्तृता है , वेगवान छंद है। ऐसा लगता है मानो राष्ट्रीय भावना को कोई सशक्त प्रवक्ता मिल गया हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- ✓ क्रान्ति का कवि - बेनीपुरी
- ✓ हुकार की भूमिका (कांति का कवि) - रामवृक्ष बेनीपुरी
- ✓ लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
- ✓ हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० नगेन्द्र प्रकाशक मयूर पेपर बैक्स दिनकर के काव्य की अंतर्धाराएँ - IGNOU Stay
- ✓ Material
- ✓ कुरुक्षेत्र - दिनकर
- ✓ मंगल- आहवान दिनकर
- ✓ दिल्ली और मास्को- दिनकर
- ✓ किसको नमन करू - दिनकर
- ✓ विपक्ष विपथगा - दिनकर

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

* आरती काछी

* शोधार्थी तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययन शाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म0प्र0)

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी साहित्य के जाने माने कवि हैं, जिनकी ख्याति चारो-ओर फैली हुई है। आज उन्हें जो सम्मान प्राप्त है, उनकी मौलिक प्रतिभा के कारण ही मिला है। उनकी रचनायें, संवेदनाओं से भरी हुई है। उनकी कविता में वीर रस और क्रांति की पुकार है। रामधारी सिंह 'दिनकर' छायावादोत्तर कवियों में प्रमुख हैं, दिनकर का आर्विभाव तब हुआ जब हमारा देश परतंत्र था और भारत के वासी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। वह अहिंसा के पक्षधर न होकर क्रांति के पक्षधर थे और उन्होंने इसी क्रांति को अपने काव्य में राष्ट्रीयता के रूप में व्यक्त किया रामधारी जी राष्ट्रीय भावना को प्रेरित करने वाले कवि थे। उन्होंने अपनी रचना में 'प्रणभंग', 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और उर्वशी में प्रमुखता से राष्ट्रीयता के स्वर को बल दिया है।

दिनकर जी की प्रथम प्रबंध रचना-प्रणभंग है। यह कवि के किशोरावस्था की रचना है, जिसमें उन्होंने महाभारत के युद्ध में शस्त्र न उठाने की घटना को आधार बनाया था। रचना का वण्र्य विषय है, श्रीकृष्ण ने युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा ली किंतु भीष्म पितामह के संहारक आघातों के कारण उन्हे यह प्रणभंग करना पड़ा। 'श्रीकृष्ण ने प्रण किया था कि वे रण में शस्त्र न उठायेंगे, परंतु भीष्म पितामह के दारूण एवं संहारक आघातों के सामने उन्हें प्रणभंग करना पड़ा।''[1]

कवि स्वयं मानते हैं कि कृष्ण का प्रणभंग अपने भक्त के सम्मान की रक्षा करते हैं तथा यह बताते हैं कि जरूरत पड़ने पर क्रांति व विद्रोह जरूरी है। कृष्ण पर ही नही सुग्रीव और बालि के प्रसंग को लेकर राम पर आक्षेप किया है।

''था न निन्दा सुग्रीव-चरित क्या बलि-सा
क्या न स्वार्थ का उसमें भाव प्रचंड था ?
किन्तु, मिला प्रणयोपहार सुग्रीव को,
औ पाया क्यों बलि प्राण का दंड था ? '' [2]

कवि ने प्रणभंग में पूर्णतः राष्ट्रीयता के स्वर उठाये हैं। जब देश पराधीन हो तो अहिंसा काम नही आती बल्कि धर्म और नीति को भूलकर शस्त्र के द्वारा नष्ट करना ही उचित है।

दिनकर जी की काव्य कृति कुरूक्षेत्र बहुत प्रसिद्ध रचना है जिसका आधार युद्ध है। युद्ध मानव को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए युद्ध आवश्यक है। दिनकर जी ने कुरूक्षेत्र की भूमिका में लिखा है कि 'कुरूक्षेत्र' की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न ही 'महाभारत' को दुहराना मेरा उद्देश्य था, वह युद्धिष्ठिर और भीष्म की प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता .....।''[3] रामधारी सिंह दिनकर की कृति कुरूक्षेत्र एक प्रबंधात्मक कृति है। कुरूक्षेत्र में महाभारत का ही प्रभाव नही है बल्कि इसमें राष्ट्रीयता की भावना भी प्रबल है। दिनकर की कविताओं में राष्ट्रीय घटनाओं के स्वर को प्रबल ही किया है। कवि के शब्दों में सन 1941 में स्थिति यह थी कि गांधी धी जी आंदोलन छेड़ने में हिचकिचा रहे थे और युवक समझते थे कि आंदोलन छेड़ा भी गया तो कुचल दिया जायेगा। इस स्थिति में मुझे वही चिंतन शुद्ध दिखाई दिया जो 'कुरूक्षेत्र' में अहिंसा अगर परमधर्म है तो हिंसा को आपर्द्धम मानना ही पड़ेगा और इस मान्यता से भी निस्तार नही है कि जिसका आपर्द्धम नष्ट हो गया उसका परमधर्म ही नही बचेगा।''[4] कुरूक्षेत्र में भी राष्ट्रीयता के स्वर प्रबल हैं। इस में युद्ध और शांति के लिए

अनेको विचारों का प्रतिपादन हुआ है। मानव की वैज्ञानिक प्रवृत्ति के कारण नये अविष्कार तो हो रहे हैं किंतु राष्ट्रीय भावना भी उतनी ही आवश्यक है। वह कहते हैं-

''पूर्व युग सा आज का जीवन नही लाचार,
आ चुका है दूर द्वापर से बहुत संसार,
यह समय विज्ञान का, सब भांति पूर्ण, समर्थ,
खुल गए है गूढ संसृति के अमित गुरू अर्थ,
चीरता तक को, संभाले वृद्धि की पतवार,
आ गया है ज्योति की नव भूमि में संसार।''[5]

'दिनकर' जी की कविता रेणुका में जितनी कविता हैं देशभक्ति पूर्ण है, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। दिनकर की कविता में राष्ट्रीयता के स्वर इतने प्रबल थे कि सोये हुए राष्ट्र प्रेम की भी उद्घाटित कर देता है। उनकी कविता 'आग की भीख' में पराधीनता से जूझ रहे भारत का दृश्य दिखता है-

''बेचैन है हवायें हर ओर बेकली है,
कोई नही बताता किस्ती किधर चली है।
मजधार है भँवर है या पास है किनारा,
या नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा''[6]

दिनकर जी की व्यथा ऐसे व्यक्तित्व की व्यथा है, जो सरकारी नौकरी में उस समय झेलनी पड़ती थी। सरकारी नौकरी की विवशता और गुलामी को झेलते हुए भी 'दिनकर' जी ने राष्ट्रीयता का स्वर निर्भीक और रागात्मक रूप से प्रबल किया। 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेकी नी' की कविताओं में हिन्दी प्रांतो में देशभक्ति के स्वर को ऊँचा करने में भरपूर योगदान दिया। कवि कहते है-

'' हम दे चुके लहू हैं, तू देवता विभा दे,
अपने अनल विशिख से आकाश जगमगा दे।
प्यारे स्वदेश के हित, वरदान मांगता हूँ,
तेरी दयाविपद में भगवान माँगता हूँ। ' [7]

कवितायें ऐसी लेखनी से आती थी जो खुद सरकार का मुलाजिम था इसलिए लोगों से अपील जोरो से थी।

हिन्दी राष्ट्रीय कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का नाम बड़े ही आदर व सम्मान से लिया जाता है। शिवपूजन सहाय का कहना है कि ''मैथिल कोकिल विद्यापति के बाद बिहार में इतना प्रभावशाली कवि कोई और नहीं हुआ था पर दिनकर को हम बिहार का ही क्यों मानें ? वह तो भाल पर शोभित बिंदु है। बिहार हिन्दी संसार की पूर्वी सीमा है दिनकर सचमुच ही हिन्दी संसार के दिनकर हैं। '' [8] रामधारी सिंह ने रेणुका में राष्ट्रीयता के जो स्वर डाले हैं वह सबको अंदर तक झकझोर देते हैं। जो इस प्रकार हैं-

''साकार, दिव्य, गौरव विराट्,
पौरूष के पुंजीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिमकिरीट,
मेरे भारत के दिव्य भाल।
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !'' [9]

'दिनकर' ने अपना काव्य राष्ट्रभावना को समर्पित किया है इसलिए उन्हें राष्ट्रकवि भी कहा जाता है। रश्मिरथी में किया गया कवि चिंतन समसामयिक है। यह भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित कृति है। वह राष्ट्रीयता के अपना जीवन न्यौछावर करते थे। उनका मानना था जब तक राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति में प्रबल नहीं होगी। तब तक जाति-पति का भेद स्थापित रहेगा। कवि कहते हैं- ''ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है। दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है। क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग, सबसे श्रेष्ठ वही ब्राम्हण है, हो जिसमें तप-त्याग।''[10]

रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य व्यक्ति के मन में राष्ट्रीय भावना को प्रेरित व उजागर करता है। जो मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का स्वभाव सरल व सौम्य होने के साथ वह मृदुभाषी भी हैं। 'दिनकर' की कविताओं में वीर तत्व के समावेश के साथ राष्ट्रीय चेतना का भी सृजन ऊँचे स्तर तक किया है। 'विजय विदेश', 'परशुराम की प्रतीज्ञा', हुंकार, रश्मिरथी आदि सभी रचनाओं में कहीं न कहीं राष्ट्रीयता के स्वर उद्घाटित होते हैं जिससे पता चलता है कि 'दिनकर' जी भरपूर राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हैं। आज 'दिनकर' की कवितायें पढ़कर राष्ट्रीयता को भारतीयता बनाना चाहिए। भारत के वासी हैं, हमें अपनी भारतीयता के साथ राष्ट्रीयता पर गर्व होना चाहिए।

'दिनकर' जी ने राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ साहित्य में आधुनिक काल में प्रवेश किया। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु जी का परचम लहरा राह था फिर भी रामधारी जी की जरूरत थी। जिन्होंने हिन्दी साहित्य जगत को अद्भुत भेंट दी जो हमेशा साहितय जगत को आलोकित करती रहेगी। राष्ट्रीय जागरण में जब सभी गाँधी जी के अहिंसा व्रत को मानकर चल रहे थे, तभी गाँधी जी की इस मान्यता के विरोध में क्रांति के सिद्धांत को लेकर 'दिनकर'

आए। अहिंसा का समर्थन करके वह देशवासियों को झूठा दिलासा नही देना चाहते थे। उन्होंने युद्ध का प्रवर्तन किया स्वयं उन्होंने कहा-''मेरी प्रिय रचना अभी लिखी ही नही गयी-जब मैं रिल्के के भाव को तुलसी की भाषा में लिख सकूँगा, तभी अपने को सिद्ध कवि मान सकूँगा।''[11] इस तरह उनकी स्वभाव भाविक सच्चाई व सरलता देखने मिलती है।

'दिनकर की राष्ट्रीयता युद्धकाल के समय की राष्ट्रीयता है। शांति और निर्माण के काल में जिस राष्ट्रीयता की आवश्यकता होती है वह अध्यात्मिकता व अहिंसा से पूरी नही हो सकती, लेकिन रामधारी सिंह 'दिनकर' की यही प्रमुख विशेषता रही है शक्ति और और क्रंाति के आह्वान में शांति मूल्य विस्मृत नही हुये है। उनकी क्रांति देश व समाज के भले के लिए थी न कि अहिंसा फैलाने के लिए 'दिनकर' भारत के उज्जवल भविष्य के लिए कल्पना कर लेखनी चलाते थे न कि उग्रता व अशांति के लिए। उनकी राष्ट्रीयता इन पंक्तियों में दिखती हैं,जो परशुराम जी प्रतीज्ञा से ली गई हैं-

''निर्जर पिनाक हर का टंकार उठा है।
हिमवंत हाथ में ले अंगार उठा है।
ताण्डवी तेज फिर से हुंकार उठा हे।
लोहित में था जो गिरा कुठार उठा है।''[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर प्रबल रूप से विद्यमान हैं। उनकी रचना कुरूक्षेत्र हो या रश्मिरथी या फिर अन्य कवितायें किसी न किसी रूप में राष्ट्रीयता को जागृत करती दिखाई देती है। 'दिनकर' ने जिस भारतीयता में राष्ट्रीयता की कल्पना की उसे उन्होंने लेखनीबद्ध कर दिया। उनका काव्य हिन्दी साहित्य जगत को अद्वितीय राष्ट्रीयता से प्रेरित करने वाला काव्य है। इस पूरे विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीयता के स्वर संस्कृति के साथ उद्घाटित हुये हैं। 'दिनकर' की कवितायें राष्ट्रीयता के स्वर को पूर्णतः उद्घाटित कर मानव को राष्ट्रीयता का अर्थ बताने में समर्थ हैं।

सन्दर्भ

1. विश्वमोहन कुमार सिंह, प्रणभंग की भूमिका, पृ0 12
2. दिनकर प्रणभंग, पृ0सं0 49
3. दिनकर, कुरूक्षेत्र भूमिका, पृ0सं0 1
4. दिनकर, रश्मिलोक, पृ0सं0 2
5. दिनकर, कुरूक्षेत्र, भाग-1 पृ0सं0 2
6. दिनकर सामधेनी, पृ0सं0 52
7. दिनकर सामधेनी, पृ0सं0 54
8. सावित्री सिन्हा, दिनकर पृ0सं0 1
9. दिनकर, रेणुका, हिमालय पृ0सं0 1
10. दिनकर, रश्मिरथी (प्रथम सर्ग) पृ0सं0 1
11. सावित्री सिन्हा, युगचरण, पृ0सं0 13
12. दिनकर, परशुराम की प्रतीज्ञा पृ0सं0 क, ख

राष्ट्रकवि दिनकर के साहित्य में राष्ट्रीयता की अनुगूँज

* कुमारी सबिता

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

शोध सार

राष्ट्रीयता शब्द से समग्र राष्ट्र और वहाँ निवास करनेवाली समस्त जाति, संप्रदाय और रीति-रिवाज के लोगों का संश्लिष्ट रूप उभरता है। भारत जैसे विशाल देश में अनेक संस्कृति, भाषा एवं रीति-रिवाज को माननेवाले लोग रहते हैं। राष्ट्रीयता का बोध इन्हें आंतरिक रूप से एकसूत्र में बाँधता है।

भारत में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप उभरने एवं विकसित होने का मूलभूत आधार पराधीनता की यातना का अहसास एवं मुक्ति का प्रयास है। स्वाधीनता प्राप्ति की इतनी लंबी अवधि के बाद भी भारतीय समाज में अंग्रेजों द्वारा बोए गए विष-बेल आज भी पनपकर लहलहा रही है। हम उन बेलों को समूल नष्ट करने में असमर्थ रहे हैं, क्योंकि राष्ट्रीय चेतना को अंधेरे में रखकर हम व्यक्तिगत हित साधना को सर्वोपरि मान बैठे हैं। आज हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। हमारे देश के सामश्र्य अनेक आयामों में विकसित हो रहे हैं। किंतु कुछ कुत्सित विचार वाले लोग राष्ट्र की जनता को वर्गों एवं धर्मों में बाँटकर क्षेत्रवाद की धुँध फैला रहे हैं। हमारा राष्ट्र अपना संगठित स्वरूप खोने लगा है। ऐसी विस्फोटक परिस्थिति में लोकचेतना एवं राष्ट्र चेतना के संचार के द्वारा देश को सही दिशा देना साहित्य का दायित्व है। राष्ट्रीय काव्यधारा एक ऐसी पप्रवृत्ति है जिसमें समग्र राष्ट्र की चेतना प्रस्फूटित होती है। यह मानस को आंदोलित कर नैतिक मूल्यों को स्थापित करता है। अतः वर्तमान संदर्भ में राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना की चर्चा अत्यंत प्रासंगिक है।

बीज शब्द: काव्यगत पृष्ठभूमि, क्रांति की चेतना, राष्ट्रवाद, मानवतावाद, सामाजिक चेतना

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति भारतेंदुयुगीन कविताओं से प्रारंभ होती है, किन्तु राष्ट्रीय चेतना का यह नया स्वर दिनकर के काव्य में अधिक उभर कर आया है। राष्ट्रकवि रामधारी सिहं दिनकर का काव्य संवेदना और विचार का सुंदर समन्वय है, जो भारतीय जनमानस को नवीन चेतना से सराबोर करता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में विदेशी शासन के अत्याचारों से जनता के मन में उठता हुआ असंतोष और क्रोध के चित्रण के साथ ही, देशी शोषकों के प्रति भी आक्रोश व्यक्त किया है। उन्होंने जहाँ एक ओर प्राचीन मूल्यों को नए जीवन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर उसे जीवंतता प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को जीवंत मूल्यों से जोड़ा भी है। उनकी दृष्टि में भारत एक भूखण्ड मात्र ही नहीं बल्कि एक विचारधारा है:

''भारत नहीं स्थान का वाचक गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं शील यह भूमण्डल भर का है,
जहाँ कहीं एकता अखण्डित जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।''

प्रारंभ से ही दिनकर की रचनाओं में देश के स्वर्णिम अतीत के प्रति मोह और ब्रिटिश कालीन भारत की दुरवस्था और परतंत्रता के प्रति क्षोभ और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी रचनाओं में राष्ट्र की वाणी मुखरित हुई है। किसी भी कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व में उसका युग प्रतिबिंबित होता है। इस संबंध में धर्मपाल सिंह कहते हैं- ''कवि ने जब काव्य जगत में प्रवेश किया उस समय भारतीय राजनीति हल-चल के दौर से गुजर रही थी। भारत अंग्रेजों के गुलाम था। इन परिस्थितियों ने ही कवि के रूप में दिनकर जी को विशेष ख्याति प्रदान की।'

दिनकर का बाल्यकाल गरीबी और संघर्ष के बीच गुजरा। दो वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो जाना, माता मनरूप देवी के ऊपर गृहस्थी का बोझ आ जाना, इन सभी परिस्थितियेां का इनके बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनका विद्यार्थी जीवन भी बहुत संघर्षपूर्ण रहा। घर की जर्जर हालात को देखते हुए इन्होंने कॉलेज की पढ़ाई के उपरान्त कई नौकरियाँ खोजी और बरबीघा के सरकारी विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर आसीन हुए। किंतु सामंती व्यवहार के विरोध में एक वर्ष की नौकरी के बाद ही इन्होंने इस्तीफा दे दिया। 1934 में बिहार सरकार के सबरजिस्टार के पद पर नियुक्त हुए। पारिवारिक जिम्मेदारी की कठिन मानसिकता से गुजरते हुए एवं सरकारी प्रताड़ना बर्दाश्त करते हुए दिनकर ने अपना लेखन कार्य जारी रखा। परिणामस्वरूप चार वर्ष में उनके बाइस तबादले हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1942 में इनका तबादला युद्ध-प्रचार विभाग में कर दिया गया। इसी समय 'भारत छोड़ो आंदोलन' जोर पर था। सरकारी नौकरी से रामधारी का मोह भंग हो गया और तीन वर्ष की आंतरिक जद्दोजहद के बाद 1945 में इन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

देश का स्वतंत्रता संग्राम, गांधी जी के कार्य और विचार, स्वामी सहजानंद सरस्वती का किसान आंदोलन, स्वामी विवेकानंद, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती इत्यादि महापुरूषों के विचार जगत का दिनकर के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। तुलसीदास के रामचरितमानस, मैथिलीशरण गुप्त एवं माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं ने दिनकर जी के कवि हृदय को पोषित और पल्लवित किया। इस प्रकार दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना की वाणी मुखरित होने लगी। हिन्दुस्तान की पौराणिक कथाओं के माध्यम से गुलाम भारत की तस्वीर प्रतीक बनकर इनके कलम से निकलने लगी। इनकी प्रांरभिक कविताएँ मासिक पत्रिका प्रकाश में प्रकाशित हुई। इस पत्रिका के संपादक ने दिनकर को प्रकाश का मुख्य स्रोत कहा। तभी से रामधारी ने अपने नाम के अंत में 'दिनकर' शब्द जोड़ लिया। इनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना ''वारदोली विजय'' है जो मध्य प्रदेश के रीवा के ''छात्र सहोदर'' नामक पत्रिका में छपी थी। वारदोली विजय की दस कविताओं में दिनकर की राष्ट्रीय चेतना बीज रूप में विद्यमान थी। वरिष्ठ पत्रकार मन्मनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक '' आज के लोकप्रिय कवि रामधारी सिंह दिनकर'' में कहा है-'' उदय के साथ ही दिनकर का स्थान हिंदी के क्रांतिकारी कवियों में बन गया, और काव्य लोभी जनता उनका प्रत्येक स्वर कंठ में बसाने लगी। यही नहीं बल्कि उन्हें सुनकर बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेता फूट-फूटकर रोने लगते थे, और बूढ़े भी सभाओं में खड़े हो जाते थे।

मैट्रिक पास करने के बाद 1928 में उन्होंने ''प्रणभंग'' लिखा जो एक खण्डकाव्य है। प्रणभंग का कथानक महाभारत से लिया गया है। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत इस काव्य में गुलामी के अपमान भरे जीवन को कलंक कहा गया है। अतः युद्ध को लेकर युधिष्ठिर के मन में जब दुविधा का भाव पैदा होता है तो अर्जुन और भीम एक साथ आक्रोश से कह उठते है-

''अपना अनादर देखकर भी आज हम जीते रहें
चुपचाप कायर से गरल का घूँट यदि पीते रहे
तो वीर जीवन का कहाँ रहता हमारा तत्व है
इससे प्रकट होता यही, हममें न अब पुरूषार्थ है।''

1930 के दशक में जब आजादी का आंदोलन अपने चरम शिखर पर था उन दिनों एक समारोह में दिनकर ने ''हिमालय के प्रति'' कविता का पाठ किया-

''रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दो उसको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।''

इस कविता ने पूरे देश में क्रांति की शंखनाद फूँक दी। इस पड़ाव पर आकर दिनकर इस अंतर्द्वन्द्व में थे कि देश के लिए क्या जरूरी है। गांधी जी का अहिंसक आंदोलन या सरदार भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, और नेताजी सुभाषचंद्र बोस की राह। उनकी अनेक रचनाओं में यह अंतर्द्वन्द्व देखने को मिलता है। यद्यपि दिनकर का प्रादुर्भाव साहित्य जगत में उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार

राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी का। किंतु भारत की आजादी के लिए उनके मन में गांधीवादी विचारधारा के प्रति अनास्था थी। दिनकर को आजादी के लिए क्रांति का मार्ग ही स्वीकार्य था।

महात्मा गांधी का असर पूरी दुनिया में दिखाई दे रहा था दिनकर ने इस परिस्थिति में गांधी के चरणों में अपनी कविता की अंजलि अर्पित करते हुए कहा,

''संसार पूजता जिन्हें तिलक
रोली फूलों के हारों से
मैं उन्हें पूजता आया हूँ
बापू अबतक अंगारोंसे।''

ब्रिटिश शासन एवं सामंती प्रथा के कारण सामाजिक रूप से मृत हो चुके भारतीय समाज में नवचेतना का अभाव था। ऐसी विषम परिस्थिति में दिनकर जी की कलम ने समाज में नवीन चेतना का संचार किया। दिनकर की 1925 से 1929 के बीच लिखी गई कविताओं का संग्रह ''रेणुका'' का प्रकाशन 1935 में हुआ। इस रचना ने गुलाम हिन्दुस्तान में क्रांति की चिंगारी सुलगा दी। रेणुका की कविताओं के माध्यम से कवि सोई हुई भारतीय चेतना को जगाना चाहता है। देश में व्याप्त अहंकार एवं अत्याचार को दूर करने के लिए कवि शंकर के तांडव की कल्पना करता है।

''ध्वनित हो नगपति का कैलाश शिखर,
नाचो हे नटवर, नाचो हे नटवर।''

रेणुका की कविताओं पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए गोरे मजिस्टेट द्वारा किए गए सवाल का जवाब देते हुए दिनकर कहते है-''रेणुका की कविताएँ देश की अराधना है। क्या देश भक्ति अपराध है, मैं आपसे ये बात जानना चाहता हूँ।

1928 में 'हुँकार' के प्रकाशन द्वारा कवि तुफान का आह्वान करता है। हुँकार की कविताओं में सर्वत्र मानव पीड़ा, विद्रोह की ऊर्जा और बलिदान का स्वर गुँज रहा है। इसमें सामाजिक विपमता और राष्ट्रीय चेतना दोनों का स्वर है। क्षीणकाय किसान, जमींदारों का शोषण, भूख से तड़पते बच्चे का रोदन और उत्पीड़न के साम्राज्य को दिनकर के किशोर नयन ने विस्मय और प्रश्न की नजरों से देखा था। मुट्ठी भर शोषक किस प्रकार अनगिनत शोषितों को पीटता है, भूखे पेट जबरदस्ती काम करवाकर खाली हाथ घर भेज देता है, इन सामाजिक विषमताओं की विवेचना भी दिनकर की रचनाओं में सजीव रूप से उपस्थित है। दिन-रात पसीना बहाकर खेतों में अनाज पैदा करने के बाद भी भारतीय किसान के बच्चे को इन्होंने भूख से तड़पते देखा था। उदासी भरी संध्या के बाद उन्हें पानी पीकर संतोष करते देखा था। ऐसी सामाजिक असंतुलन को देखकर कवि का मन हुँकार भरता है-

''हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते है,
दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते है।''

अनाज पैदा करने वाले किसान भूखे मरते थे, और जमींदार वैभव में लोटते थे। कवि भारतीय समाज की इस अमानवीय व्यवस्था को देखकर इसे मिटाने के लिए दहाड़ उठता है-

''श्वानों को मिलते दूध वस्त्र
भूखे बच्चे अकुलाते है,
माँ की हड्डी से चिपक,
ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।''

1943 में प्रकाशित 'कुरूक्षेत्र' दिनकर का प्रथम प्रबंध काव्य है। इसमें दिनकर द्वारा रचित उन कविताओं का संग्रह है जिसे उन्हांेने अंग्रेज सरकार की नौकरी करते हुए लिखा था। इस रचना में भी कवि राष्ट्रवादी एवं मानववादी दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इस काव्य संग्रह में कवि ने युद्ध के दो स्तर स्पष्ट किए हैं- आंतरिक और बाह्य। देवासुर संग्राम आंतरिक युद्ध है और शेष सभी बाह्य। इस रचना के माध्यम से कवि देशवासियों को यह संदेश देना चाहते है कि जब अपना अस्तित्व खतरे में हो तो उस समय सही-गलत, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की चर्चा करना मूर्खता है। संकट की घड़ी में शारीरिक बल का प्रयोग करना धर्म के अनुकूल है। त्याग, तप, भिक्षा, वैरागी योगियों का धर्म है। कवि पाप और पुण्य को व्यवहारिकता की कसौटी पर कसते हुए इसे इस प्रकार व्याख्यायित करते है-

'छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।'

इस प्रकार कुरूक्षेत्र में दिनकर का एक प्रतापी रूप दिखाई पड़ता है। साहित्य संसार में कुरूक्षेत्र को आज का गीता कहा गया है। अतः कुरूक्षेत्र अपने समय और समाज के प्रति जागृति का संदेश देनेवाला समन्वय की भूमि पर स्थित काव्य है। यहाँ युद्ध की अनिवार्यता, धर्म एवं शांति के मंगल की शुभकामना सन्निहित है।

1941 से 1946 तक का काल देश में क्रांति का काल रहा है। इसी समय 1946 में ''सामधेनी'' प्रकाशित हुई जिसमें समग्र देश का प्रतिशोध और प्रतिहिंसा का स्वर व्यक्त हुआ है। यहाँ तक आते-आते हुँकार भरने वाला कवि स्थिर हो गया है। वह शांति की ओर विचारशील हो गया है। श्री विश्वनाथ सिंह के अनुसार दिनकर का यह संग्रह ''सामधेनी'' यौवन के उद्दाम वेग की वाणी ही नहीं युग की वाणी भी है। इस रचना के माध्यम से कवि देशवासियों को पराधीनता के बंधन को तोड़ने के लिए आंदोलित तो करते ही है साथ ही, जब आंदोलनकर्मी थकने लगते हैं, तो उन्हें आश्वासन और प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ने को प्रेरित भी करते हैंः

''वह प्रदीप जो दीख रहा है
झिलमिल दूर नहीं है,
थककर बैठ गए क्यों भाई,
अब मंजिल दूर नहीं है।''

1932 से 1940 के मध्य में रचित ''इतिहास के आँसू'' में कवि की दस ऐतिहासिक कविताएँ संग्ग्रहित है। इसमें कवि ने इतिहास के महान योद्धाओं की वीरता का गुणगान किया है। राष्ट्रकवि वर्तमान की समस्या के समाधान के लिए अतीत का दरवाजा खटखटाता है। जब वह अतीत के दरवाजे पर खड़ा होता है, तो उसे मगध, नालंदा और वैशाली की याद आती है। कवि गंगा से प्रश्न करता है कि वह कौन सा विषाद है जिसके कारण उसके प्रवाह में शिथिलता आ गई है। गुप्त वंश की गरिमा, अशोक की करूणा, गौतम बुद्ध का शांति संदेश, लिच्छवियों की वैशाली सभी की स्मृतियाँ गंगा के मानस में अवश्य सुरक्षित होगी। इन कविताओं में दिनकर सिर्फ अतीत का गौरवगान ही नहीं करते बल्कि उससे प्रेरणा लेकर भारतवासियों को देश की गुलामी की जंजीर को काटने के लिए प्रेरित भी करते हैं। कवि आह्वान करते हैं-

''समय माँगता मूल्य मुक्ति का,
देगा कौन मांस की बोटी,
पर्वत पर आदर्श मिलेगा,
खाएं चलो घास की रोटी।''

हिन्दुस्तान के दरवाजे पर आजादी दस्तक दे रही थी। सभी भारतीय खुश थे पर देश के बँटवारे का फैसला को दिनकर का हृदय नहीं स्वीकार कर पा रहा था। उनकी तकलीफ इस प्रकार बयान हुई-

''हाथ के जिसके कड़ी टूटी नहीं
पाँव में जिसके अभी जंजीर है,
बाँटने को हाय तौली जा रही
बेहया उस कौम की तकदीर है।''

हिन्दुस्तान की तकदीर बँट रही थी, साझा संस्कृति बँट रही थी। दंगा में हजारो लोग मारे गए, महिलाओं के साथ अत्याचार हुआ। दुखी दिनकर ने ''तकदीर का बँटवारा'' में लिखाः

''जलते हैं हिंदू मुसलमान
भारत की आँखें जलती है
आनेवाली आजादी की
लो दोनों पाँखें जलती है।''

इस प्रकार देश के बँटवारे के साथ स्वराज का सपना साकार हुआ। कवि ने ''अरूणोदय'' शीर्षक कविता लिखकर स्वाधीनता का स्वागत भी किया। साथ ही गोरी हुकूमत की मानसिकता लेकर चल रहे अफसरतंत्र और नेताओं को उन्होंने चेतावनी भी दी। उन्होंने एक ऐसी कालजयी रचना को जन्म दिया जो वर्षों बाद भी आजाद भारत में हुकूमत को हिलाने की ताकत रखता है-

''सदियों से ठण्ढ़ी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो जनता आती है।''

जिस स्वराज की कल्पना की गई थी, वह देशवासियों को नहीं मिला। सत्ता के शीर्ष पर बैठे नेतागण सत्ता की जाल में फँसकर अपनी जिम्मेदारी भूल बैठे। गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, सामंती सोंच इत्यादि समस्याएँ देश में घुन की तरह लगा रहा। राष्ट्रकवि दिनकर ऐसी परिस्थिति में आम आदमी की मुखर आवाज बनकर उभरे।

'समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध
देखो जो तटस्थ है, समय लिखेगा उनका भी अपराध।''

भारतीय समाज में जातिप्रथा का जकड़न उन्हें दुखी कर रहा था। 1952 में महाभारत के पात्र कर्ण को केंद्र में रखकर ''रश्मिरथी'' जनता को समर्पित किया। इस संग्रह में कवि ने सारे पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को नए सिरे से जाँचा है। जातिवादी व्यवस्था के साथ-साथ गुरू-शिष्य संबंध, अविवाहित मातृत्व, धर्म-अधर्म, छल-प्रपंच, इत्यादि अनेक समस्याओं को भारतीय समाज की नैतिकता की पृष्ठभूमि पर लाकर खड़ा कर दिया है। यह

रचना इस बात का प्रमाण है कि दिनकर के काव्य में राष्ट्रवाद के साथ-साथ दलित मुक्ति-चेतना का भी स्वर है। कवि ने कर्ण के माध्यम से दलितों की पीड़ा को स्वर दिया है:-

''मैं जाति गोत्र से हीन दीन
राजाओं के सम्मुख मलीन
जब रोज अनादर पाता था,
कह शुद्र पुकारा जाता था,
पत्थर की छाती फटी नहीं,
कुंती तब भी तो कटी नहीं।''

भारत चीन युद्ध पर लिखी गई उनकी रचना ''परशुराम की प्रतीक्षा'' (1962) वीरता तथा ओजपूर्ण कविताओं का संग्रह है। कवि ने भारत के वीरों को परशुराम की तरह देखा है। गांधीवादी अहिंसा को त्यागकर परशुराम की तरह धर्म और जाति की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने का अनुरोध किया है। एक समय था जब कवि को अर्जुन और भीम जैसे वीरों की आवश्यकता थी, किंतु आज उसे लगता है कि देशभर में जो संकट का बादल मंडरा रहा है उससे बचने के लिए परशुराम धर्म की आवश्यकता है। कवि ने कहा है-

''योगियों! जगो, जीवन की ओर बढ़ो रे,
बंदूकों पर अपना आलोक मढ़ो रे।''

कवि चीन के विरूद्ध युद्ध का समर्थन करता है। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की भावना को प्रोत्साहित करता है। युद्ध के समय में तटस्थ बनकर चुप रहने को कवि कायरता मानता है।

दिनकर आजादी के बाद भी उतने ही परेशान थे जितने आजादी से पहले। इसका कारण हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश की अंदरूनी समस्याएँ और आपसी झगड़े थे। राजनीति में बढ़ते भ्रष्टाचार ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाला था। कवि कहते हैं-

''हवा देश की बदल गई है
चाँद और सूरज तक
छिपकर नोट जमा करते है,
टोपी कहती है मैं थैली बन जाऊँ
कुरता कहता है मुझे बोरिया ही बना लो,
इमान बचाकर कहती है आँखें सबकी,
बिकने को हूँ तैयार, खुशी हो जो दे दो।''

इस प्रकार रामधारी सिंह दिनकर के काव्य का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि इनका काव्य राष्ट्रीय चेतना के भावों से भरा पड़ा है। आत्मविश्वास, कर्मठता, समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता, आशावादी दृष्टिकोण, उदात्त सांस्कृतिक दृष्टि, प्रखर राष्ट्र अभिमान आदि ऐसे तत्व हैं, जो दिनकर को अन्य परंपरावादी कवियों से अलग करते है। डा॰ गोपाल राय दिनकर के काव्य के एक और पक्ष की ओर ध्यान दिलाते है-''देश के स्वाधीन होने के समय दिनकर हिन्दी के एक प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित कवि थे। वे ऐसे कवि थे जिनकी कविता राष्ट्रीय आंदोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से संबद्ध रही थी। दिनकर स्वाधीनता संग्राम में नहीं कूदे थे, केवल कलम से ही उसमें सहयोग दे रहे थे।'' वास्तव में वे राष्ट्र की चेतना के कवि है। उन्होंने स्वयं ''वट-पीपल'' में राष्ट्रकवि की पहचान कराते हुए कहा है-'' राष्ट्रकवि उसे कहना चाहिए जो केवल अतीत की अराधना नहीं करके अपने व्यक्तित्व के जोर से भविष्य को भी प्रभावित करते है। जिसकी एक पाँख तो अतीत को समेटे रहती है, किंतु जो अपनी दूसरी पाँख से भविष्य की ओर संकेत करता है।'' उनकी कविताएँ आरंभ से अंत तक सामाजिक दायित्व का वहन एवं राष्ट्रीय गरिमा एवं चेतना की प्रस्तुति है। यही कारण है कि आर्थिक असंतोष एवं भ्रष्टाचार के वर्तमान युग में भी दिनकर की प्रासंगिकता और महत्ता बनी हुई है।

सन्दर्भ

1. दिनकर एक शताब्दी - डा॰ स्वयंवती शर्मा, डा॰ दिनेश कुमार
2. राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्यकला - शिखरचंद्र जैन
3. दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नए आयाम - डा॰ गोपाल राय सत्यकाम
4. दिनकर का वीर काव्य - धर्मपाल सिंह आर्य
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा॰ नागेंद्र
6. वट पीपल - रामधारी सिंह दिनकर
7. दिनकर रचनावली - (सं॰ तरूण कुमार, नंद किशोर नवल)

रामधारी सिंह दिनकर और राष्ट्रीय-चेतना

* डॉ. स्मिता कुमारी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, एम. एम. महिला कालेज, आरा

रामधारी सिंह दिनकर ओजस्वी कवि और राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात है। इनकी रचनाएं राष्ट्र की अस्मिता के प्रति उद्वेलित करती है तथा भारतीय संस्कृति से परिचित कराता है। इनका साहित्य जनमानस में राष्ट्रीयता का अमर मंत्र फूकने में सक्षम है तथा कालजयी रचनाएं षौर्य, पराक्रम एवं स्वातंत्र्य चेतना का उद्घोश करती है। इनकी कविताओं में एक ओर ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रांति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। इन सभी अभिव्यक्तियों की चरम उत्कर्ष कुरूक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मौजूद है।

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म **23** सितम्बर **1908** ई0 में बिहार के बेगूसराय में सिमरिया नामक गांव में हुआ था। इनके पिता रवि सिंह और माता मनरूप देवी थीं। इनके पिता एक साधारण कृशक थे। जब दिनकर एक वर्ष के थे तभी पिता का स्वर्गवास हो गया। आर्थिक विशमताओं के बीच दिनकर का बाल्य-जीवन बीता।

दिनकर जी ने सामाजिक और आर्थिक असमानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की। इनकी प्रमुख रचनाओं में रश्मिरथी, हुंकार, कुरूक्षेत्र, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। इनकी अधिकतर रचनाएं वीर रस से ओतप्रोत है। इन्हें वर्ष **1959** में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया। इन्हें अपने क्षेत्रजीवन में इतिहास, राजनीति शास्त्र और दर्शनशास्त्र जैसे विशयों को पसंद था। बाद में इनका झुकाव साहित्य की ओर हुआ। वे अल्लामा इकबाल और रवींद्रनाथ टैगोर को अपना प्रेरणा श्रोत मानते थे। इन्होंने टैगोर की रचनाओं का बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद किया। दिनकर जी का पहला काव्यसंग्रह 'विजय संदेह' वर्ष **1928** में प्रकाषित हुआ। पद्मभूशण से सम्मानित दिनकर राज्यसभा के सदस्य भी रहे। इन्हें **1972** ई0 में ज्ञानपीठ सम्मान भी दिया गया।

जनमेजय का कहना है कि भूशण के बाद दिनकर ही एकमात्र ऐसे कवि रहें, जिन्होंने वीर रस का खूब इस्तेमाल किया। वह एक ऐसा दौर था, जब लोगों के भीतर राष्ट्रभक्ति की भावना को अपने कविता के माध्यम से आगे बढ़ाया। जनकवि होने के कारण इन्हें राष्ट्रकवि कहा गया।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चर्तुर्वेदी के साथ-साथ रामधारी सिंह दिनकर का नाम सर्वोपरी है। इनकी प्रमुख रचनाएं रेणुका, हुंकार, कुरूक्षेत्र, रश्मिरथी बापु, परशुराम की प्रतीक्षा इत्यादि में राष्ट्रीय चेतना के गुण विद्यमान है। देश की आजादी की लड़ाई में भी दिनकर ने अपना योगदान दिया। वह बापू के बड़े मुरीद थे। हिन्दी साहित्य के बड़े नाम दिनकर उर्दू, संस्कृत, मैथली और अंग्रेजी भाशा के भी जानकर थे। **1999** ई0 में उनके नाम से भारत सरकार ने डाक टिकट जारी किया था। दिल्ली के रामलीला मैदान में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने हजारों लोगों के समक्ष दिनकर की पंक्ति सिंहासन खाली करो कि जनता आती है का उद्घोश करके तत्कालीन सरकार के खिलाफ विद्रोह का षंखनाद किया था। दिनकर जी ने गुलाम भारत और आजाद भारत दोनों में अपनी कविताओं के जरिये क्रांतिकारी विचारों को विस्तार दिया।[1]

दिनकर जी के यहां राष्ट्रीय चेतना कई स्तरों पर व्यक्त हुई है। हुंकार, रेणुका, इतिहास के आँसू जैसी कविताओं में दिनकर जी ने विद्रोह और विप्लव के स्वर

को उभारा है। इनमें कर्म, उत्साह, पौरूश एवं उत्तेजना का संचार है। यह सब तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति के लिये अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ।

दिनकर जी के यहाँ राष्ट्रीय चेतना एक अन्य स्तर पर वहाँ दिखाई देती है, जहाँ वे शोषण का प्रतिकार करने का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं कि यदि कोई हमारे साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करें तो नैतिकता का तकाजा युद्ध करना ही है न कि अनैतिकता को स्वीकार करना-

छीनना हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले, यह पाप है''

संघर्ष के आह्वान के साथ दिनकर जी ने प्राचीन भारतीय आदर्षों एवं मूल्यों की स्थापना के माध्यम से भी राष्ट्रीय जागरण व राष्ट्रीय गौरव की भावनाओं को जगाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

दिनकर जी की राष्ट्रीय चेतना संकीर्ण नहीं है। यह न केवल ब्रिटिश राज्य का विरोध करने वाली है अपितु स्वतंत्रता के बाद भी जनता के सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने वाली है। कवि ने 'दिल्ली', 'नीम के पत्ते', 'परशुराम की प्रतीक्षा, में स्वतंत्रता-उपरांत जनजीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विशमताओं का चित्रण किया है-

''सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है।
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अंधियारा है।''

दिनकर जी ने परशुराम की प्रतीक्षा में देश के पौरूश को जागृत हुए कहते है कि:-

चढ़ तुम शैल शिखरों पर सोम पिया रे,
योगियों नहीं विजयी के सदृश जियो रे।

दिनकर जी ने हिमालय के माध्यम से भारतीयों के मन को संबोधित और उद्वेलित करते हुए कहते है कि-

ओ, मौन तपस्वी-लीन यती।
पत भर को तो कर दृगोन्मेश।
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश
सुख-सिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिट-धार,
जिस पुण्यभूमि की ओर बही,
तेरी विगलित करूणा उदार।

दिनकर जी सामधेनी में भारतीय जनमानस को साहस और उत्साहित करते हुए कहते है:-

''यह प्रदीम जो दीख रहा है झिलमिल दूर नहीं है
थककर बैठ गये क्यों भाई, मंजिल दूर नहीं है।''

1954 ई. मैं दिनकर जी ने समरशेष कविता में लिखते हुए कहते है:-

''पूछ रहा है जहाँ चकित हो जन-जन देख अकाज।
सात वर्ष हो गये राह में अंटका कहां स्वराज।''

दिनकर जी ने कुरूक्षेत्र में युद्ध के औचित्य और अनौचित्य का विस्तार से वर्णन किया गया है। कवि ने कुरूक्षेत्र में युद्ध जैसे नीरस विशय को बड़ी ही सरसता से प्रतिपादित किया है। इनके अनुसार न्याय से ही षांति आ सकती है। उसके लिए कभी-कभी युद्ध भी करना पड़ता है। इसतरह यहां दिनकर जी ने साम्राज्यवाद के खिलाफ क्रांति के स्वर भी स्फुटित करने की आवष्यकता प्रबल बल देतें है।

इस प्रकार ये कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दिनकर जी के यहां राष्ट्रीय चेतना उसी स्तर पर व्यक्त हुई है जो उन्हें भारतेन्दु, गुप्त जी की परंपरा में स्थान दिलवाती है।

संस्कृति के चार अध्याय में रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि भारत के मन को नवीन बनाने की दिशा में सबसे अधिक काम पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया है। जब उनकी राजनैतिक सफलताओं की कहानी धुँधली पड़ जायगी, तब भी, आगे का इतिहासकार यह बराबर लिखेगा कि भारत के मन को झकझोर कर उसे नवीन बनाने की जितनी तड़प जवाहरलाल में थी, उतनी किसी और नेता में नहीं थी। किन्तु, संस्थिर क्षणों में अतीत की महिमा का ध्यान जवाहरलालजी को भी होता है और वे भी यह महसूस करते है कि भारत का अतीत यदि नष्ट हो गया, तो भारत का कोई भी गुण शेष नहीं रहेगा। ''मैं अक्सर यह सोच कर हैरान रह जाता हूँ कि हमारी जाति कहीं बुद्ध, महाभारत, रामायण, गीता और उपनिशदों को भूल जाय तो उसका क्या हशर होगा। हमारी जड़ें उखड़ जायेंगी, हम अपनी उन सारी बुनियादी खूबियां को खो देगें, जो युगों से हमारे साथ चली आ रही हैं और जिनके कारण दुनियां में हमारी हैसियत बनी हुई है। तब भारत भारत न रह सकेगा।''[2]

संस्कृति के चार अध्याय में रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि गांधीजी यह भी बता गये हैं कि भारत अपनी बात तब तक नहीं बोल सकेगा, जब तक वह अंगेरेजी में षिक्षा ग्रहण करता और अंगरेजी में ही काम करता है। सन् **1920** ई0 में जब गांधीजी की प्रेरणा में

राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई, उस समय कई विशयों के पाठयग्रन्थ हिन्दी में उपलब्ध नहीं थे। गांधीजी ने कहा, ‘‘शिक्षक बिना ग्रन्थ के पढ़ायें।’’ जब तक अंगरेजी की नाव हमारे घाट पर बँधी है, हम अपनी भाशाओं की अपेक्षा करते ही जायेंगे। भारत के आध्यात्मिक उद्धार का रास्ता यह है कि अंगरेजी का अवलंब छोड़ कर हम अपनी भाषाओं में कूद पड़ें।[3]

इसतरह दिनकर जी हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि और निबंधकार थें। इन्हें आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में जाना जाता है और हिन्दी साहित्य में दिनकर की पहचान राष्ट्रकवि के रूप में है। उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण व संघर्ष के आह्वान का जीता-जागता दस्तावेज है।

सन्दर्भ

1. एडिटेड बाय न्यूज नेशन डेस्क, **14** जून **2018**
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दीनकर, प्रकाशक उदयाचल, पटना, तृतीय संस्करण, सितम्बर, **1962,** पृष्ठ-**746**
3. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दीनकर, प्रकाशक उदयाचल, पटना, तृतीय संस्करण, सितम्बर, **1962,** पृष्ठ-**747**

'रश्मिरथी' में रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीयता

* डॉ. पुलकित कुमार मंडल

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बी. एम. डी. कॉलेज, दयालपुर (वैशाली), बिहार।

उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध युवा संत एवं विष्व में भारतीय सांस्कृतिक आध्यात्मिक चेतना के प्रतिनिधि महापुरूश स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि हमारा राष्ट्र ही जाग्रत देवता है। हमारे राष्ट्र से ही हमारा अस्तित्व है। इससे ही हमारे भौगोलिक, ऐतिहासिक , सांस्कृतिक , आर्थिक , शैक्षिक, प्रशासनिक एवं संप्रभुत्विक अस्तित्व सुरक्षित है। हमारे राष्ट्रीयता साहित्य हमारी भावनाओं का पोशण करते हुए हमें राश्ट्रीता प्रगति एवं रक्षा हेतु प्रेरित करते है। हमारी राष्ट्रीयता को पुश्ठ करने वाले साहित्यों में सें एक है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित खंड काव्य रश्मिरथी । 'रश्मिरथी' में द्वापर युगीन महाभारत काल खंड के प्रसिद्व महायोद्धा अंगराज कर्ण के प्ररिपेक्ष्य में वर्णन हुआ है । चूकि किसी भी राष्ट्र के अतीत में घटित ऐतिहासिक घटना से उस राष्ट्र का भविष्य भी निर्देषित होता है अतः महाभारत काल में घटित घटना से हमारा राष्ट्र वर्तमान में सचेत और प्रेरित हो रहा है तथा भविष्य में भी होता रहेग। 'रश्मिरथी' मे वर्णित घटनाओ से हमे घर्म, कर्म, त्याग, अनुशासन, सघर्श , कर्तव्य एवं अधिकार की प्रेरणा मिलती है। एक उन्नत, सचेत एवं सुरक्षित राष्ट्र के निर्माण हेतु सबसे बडी पूंजी उस राष्ट्र के वासियों की सही सोच,सही कर्म, अतीत का बोध भविष्य कि दृष्टि एवं पूर्ण संघर्ष है।

'रश्मिरथी' में दिनकरजी द्वारा वर्णित राष्ट्रीयता के तत्वों को निम्नांकित बिन्दुओं के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

(क) आत्मिक एवं स्वास्थ्य - बल

किसी भी राष्ट्र के निर्माण एवं संचालन हेतु प्रथम तत्वों के रूप में जन-समूह अत्यंत प्रमुख है। उस जन - समूह में स्वस्थ एवं प्रसन्नचित जनों की संख्या अधिकाधिक रहें, तो वह राष्ट्र षीघ्र ही प्रगति - मार्ग प्रषस्त कर लेगा और वहाँ के वासियों में सुख - समृद्धि एवं षांति का प्रसार हो जाएगा। राष्ट्र के हर जन मे षारीरिक एवं आत्म - बल के सतत संचार होने की कामना करते हुए दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग मे कामना करते हुए कहा है कि -

जय हो जग मे जले जहां भी
नमन पुनित अनल को,
जिस नर में भी बसे हमारा नमन
तेज को, बल को

उपर्युक्त उद्धरण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि मनुश्य षारीरिक रूप से सबल तभी हो सकता है, जब उसके मन में कर्म करने कि ज्वाला जले और कर्म फल प्राप्ति कि भूख विद्यमान् हो ।

(ख) ज्ञान की निश्पक्षता - किसी भी विशय एवं कर्म से संबंधित ज्ञान तभी सार्थक सिद्द होता है जब वह लिग भेद, जाति भेद,भाशा भेद,एवं प्रांत भेद से परे होकार प्रयुक्त होता है। निश्पक्ष एवं सार्वभौमिक ज्ञान से ही जन-कल्याण, राष्ट्र कल्याण एवं विष्व कल्याण संभव होता है। दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' में इसकी पुश्टि करते हुए कहा है कि -

''किसी वृन्त पर खिले विपिन में ,
पर नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नही गुणो का
आदि, षक्ति का मूल,।
उँच - नीच का भेद ना माने, वही श्रेश्ठ ज्ञानी है,
दया धर्म जीसमे हो, सबसे बडी पूज्य प्रणि है।''

(ग) राष्ट्र समर्पित शासन

किसी भी राष्ट्र के लिए उसका शासन ही जीवन है । इसकी सतत् स्वस्थ्य प्रणाली से ही राष्ट्र सुरक्षित होकर उत्तरोत्तर विकास एवं समृद्धि की ओर अग्रसर रहता है राजतांत्रिक शासन प्रणाली मे भी व्यक्तिगत स्वार्थ से परे रहने वाले शासन ने ही राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि मे योगदान दिया है। निजी स्वार्थ एवं परिवारवाद से ग्रस्त शासकों ने राष्ट्र को समय- समय पर हानि ही पहंुचाई है। महाभारत काल से लेकर वर्तामाण में कई राज्यो एवं राष्ट्रों के संकटग्रस्त होने के उदाहरण हमारे सम्मुख स्पशट है राष्ट्रकवि दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' मे एक सुरक्षित एवं विकसित राष्ट्र हेतु परिवारवाद पर प्रहार करते हुए कहा है कि -

''नही फुलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित वार लिखते वे पुर से दुर कुन्ज कानन में।
समझे कौन रहस्य ? प्रकति का बडा अनोखा हाल,
गुदडी मे रखती चुन-चुन कर बडे किमती लाल।''

(घ) जाति भेद राष्ट्रीय प्रगति में बाधक -

मानव सभ्यता के आरंभ में जन समूहों को कार्य कुसलता के आधार पर कार्यो का आवंटन किया गया जो कि उस समूह विशेष कि पहचान बन गई, कालांतर में वह कर्म पहचान जाति पहचान के रूप में रूढ हो गई, भले उस समूह के किसी व्यक्ति मे संबंधित कर्म कि कुषलता हो या नही हो। तत्कालिन समाज के तथाकथित बुधिजीवियों के द्वारा उस कर्म पहचान को जन्मजात पहचान के रूप में मान्याता देकर समूह विषेश का षोशन दूषन एवं प्रताडना किया जाने लगा जो कि दूर्भाग्य से वर्तमान में भी मुख्य धारा से दुरवर्ती गावों में प्रचलित है,जिसके कारण वह ग्रामिण समाज राष्ट्र के पूर्णतः विकास मे वाधक भी बन रहा है। दिनकर जी ने रश्मिरथी में महायोद्या कर्ण के मुख से जाति भेद कि भयाबहता का वर्णन करते हुए कहा है कि-

''मस्तक उँचा किए, जाति का नाम लिए चलते हो पर अधर्ममय षेाशन के बल से सुख में पलते हो, अधम जातियो से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण, छल से माग लिया करते हो अगुठा का दान।''

(ड) गुण एवं कर्म आमजन द्वारा सर्वत्र पूजीत -

गुणि एवं कर्मषील मनुश्य आमजन द्वारा सर्वत्र ग्राहय एचं पूज्य होता है। व्यवसाय के क्षेत्र में अधिकांष जन जात - पात कि अनदेखी करते हुए कार्य करता है, लेकिल परिवारिक एवं राजनितिक परिपेक्ष्य में अपनी सोच संकीर्ण करते हुए अधिकांस जन जात - पात के मकर जाल मे फसकर स्वंय एवं राष्ट्र की प्रगति को अबरूद्य कर ही देता है यदि हमारे समाज से जात पात का नाष कर दिया जाए तो हमारा राष्ट्र निर्वाध एवं षांतिपूर्वक प्रगतिपथ पर अग्रसर हो जाएगा। दिनकर जी ने रश्मिरथी काव्य मे गुण एवं कर्म के प्रति अंगराज कर्ण का समान्य जन द्वारा स्वागत एवं सम्मान का वर्णन करते हुए यह कहा है कि -

'' लगे लोग पूजने कर्ण को कुकुम और कमल से,
रंगभूमि भर गई चतुर्दिक पुलकाकुल कल कल से।
विनयपूर्ण प्रतिवंदन में ज्यों झुका कर्ण सविषेश,
जनता विफल पुकार उठी, जय महराज अंगेष।''

(च) गुरू शिष्य में आत्मीय संवंध

ज्ञान सभी प्रकार के सुखो समृद्धि, सम्मान एवं षांति का प्रदाता है, और हम यह भी जानते हौ कि बिना गुरू ज्ञान नही,हम ज्ञानवान होकर ही किसी भी रूप में राष्ट्र की प्रगति,प्रतिश्ठा एवं रक्षा में सहयोग कर सकते है,हम ज्ञान का पात्र तभी तक बने रहा सकते है जबतक कि हम गुरू के अनुशासन एवं स्नेह के अनुसार व्यावहार करते है वर्तमान में हम गुरू शिष्य के आत्यमिय संवंध मंे हो रहे हास को स्पश्टतः देख रहे है जो कि सबसे बडी राष्ट्र समस्या है गुरू शिष्य के आत्मियता रहित संवंध के कारण ना हि शिष्य उपर्युक्त पात्र बन पा रहे है और ना ही गुरू पात्र पूर्तिकर्ता बन पा रहा है रश्मिरथी मे राष्ट्र कवि द्वारा श्री परषुराम कर्ण को एक आदेष गुरू - शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसे -

''वृद्यदैह,तप से कृष काया उस पर आयुध संचालन,
हाय , पडा श्रम भार देव पर असमय मेरे कारण।
किंतु, वृद्य होने पर भी अंगो मे हे क्षमता कितनी,
और रात दिन मुझपर दिखलाते रहे ममता कितनी।
कहते हे, ओ वत्स ! पुश्टि कर भोग ना तु यदि खोएगा,
मेरे शिक्षण कि कठोरता को कैसे सह पाएगा ?
अनुगामि यदि बना कही तू खान पान में भी मेरा ,
सुख जाएगा लहू, बचेगा हड्डी भर ढाँचा तेरा।''

(छ) शासन द्वार शिक्षक,वैज्ञानिक,कवि एवे कलाकार को महत्व प्रदान करना

किसी भी राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं प्रगति में वहाँ के षिक्षको का महत्वपूर्ण योगदान होता है,क्योकि शिक्षक ही वहाँ की नई पीढी मे ज्ञान का संचार कर सद्कर्म एवं

संधर्श करते हुए लक्ष्य - प्राप्ति हेतु प्रेरणा एवं सहयोग प्रदान करते है।

अतः शासन का यह कर्तव्य है कि षिक्षको आर्थिक एवं मानसिक हितो को ध्यान में रखते हुए कार्य करे । शिक्षकों के संतुष्ट एवं प्रसन्नचित रहने पर ही हम विद्यार्थियो के लिए उपयुक्त षिक्षा कि अपेक्षा कर सकते है। कवि एवं कलाकार जनता के बीच राष्ट्रीय कला एवं संस्कृति के भावो का संचार करते हुए राष्ट्रीय भावनाओ उन्मेश जगाए रखते है, जिससे राष्ट्र के अधिकांश जन राष्ट्र प्रेम से प्रेरित होकर स्वंय कि योग्यता से संबंध कार्य करते हुए राष्ट्रीय प्रगति में सहयोग करते है। अतः शासन को चाहिए कि कवि एवं कलाकारो की भी आर्थिक सहायता करते हुए उन्हे मान सम्मान प्रदान करे। राष्ट्रकवि दिनकर ने रश्मिरथी मे शिक्षक, विज्ञानी, कवि एवं कलाकार के हितार्थ शासन को संबोधित करते हुए कहा है कि -

''कवि , कोविद , विज्ञान- विषारद,
कलाकार, पंडीत , ज्ञानी,
कनक नही , कल्पना ज्ञान,
उज्जवल चरित्र के अभिमानी ,
इन विभूतियो केा जब तक
संसार नही पहचानेगा,
राजाओ से अधिक पूज्य
जबतक ना इन्हे वह मानेगा,
तबतक पडी आग मे धरती
इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे दुखोः से
छूट नही वह पाएगी।''

(ज) परोपकार कर्म राष्ट्रीय उत्थान मे सहायक -

हमारा जीवन विद्या,कर्म एवं धन से संचालित होता है । जीवन मे इन तत्वो का संचरण दान एवं परोपकार से होता है । हम इन तत्वो का अधिकाधिक केवल संचय करते है और केवल निजी हितार्थ उपयोग करे तो इन तत्वो कि संचित मात्रा कुछ दिनो में अनुपयोगी होकर नश्ट हो जाएगी। यदि हम अपनी संचित निधियो से समाज के निर्धन जन का उपकार करेगें तो हमारे समाज एवं राष्ट्र का आर्थिक, बौधिक एवं भावनात्मक उत्थान होगा। दिनकर जी ने रश्मिरथी मे दान के महत्व से हमे अवगत कराते हुए कहा है कि -

'' जीवन का अभियान दान बल से अजस्र चलता है,
उतनी बढती ज्योति, स्नेह जितना अनल्प जलता है।
और दान में रोकर या हँसकर हम जो भी देते है,
अहंकार वष उसे स्वत्व का त्याग मान लेते है।
यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक मृत्यु के पहले ही मरना है।''

(झ) वासना एवं लोभ राष्ट्रीय हित मे बाधक -

हमार जीवन इच्छा से निर्मीत एवं संचालित होता है। इच्छा की अधिकता एवं प्रवलता को वासना कहा जाता है और हम यह भी जानते है कि हमारे जीवन में किसी भी तत्व कि अधिकता हमारे लिए घातक है। लोभ वासना की प्रारंभिक अवस्था है अतः लोभ एवं वासना कि अधिकता हमारे जीवन, समाज एवं राष्ट्र के लिए विनाषकारी है । राष्ट्रकवि दिनकर जी ने रश्मिरथी के षष्ठ सर्ग में लोभ एवं वासना से परिचित एवं सचेत करते हुए इससे बचकर कर्म करते हुए राष्ट्रीय उत्थान में सहयोग करने का आहवान किया है । यथा-

''वासना - वहिन से जो निकला,
कैसे हेा वह संयुग कोमल ?
देखने हमे देगा वह क्यों,
करूणा का पंथ सुगम षीत ?
जब लोग सिद्धि का आखें पर
मांडी बनकर छा जाता है,
तब वह मनुश्य से बडें -बडें
दुष्चिन्त्य कृत्य करवाता है।''

इस प्रकार, राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का प्रसिद्ध खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' में वर्णित राष्ट्रीय तत्वों से हम परिचित हुए। हम आशान्वित है कि इसके राष्ट्रीयतायुक्त भावों - विचारों एवं संदेषों को अपनें दैनंदिन एवं बहुप्रतीक्षित कार्यों में प्रयुक्त कर हम अपने निजी - सामाजिक जीवन एवं राष्ट्रीय उत्थान अवश्य करेंगें।

कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना

* केशव दहिया

* पीएच. डी (शोधार्थी), दिल्ली विश्वविद्यालय

चार घटकों से मिलकर 'राष्ट्र' का निर्माण होता है। क्षेत्र प्रथम घटक है तत्पश्चात उस पर रहने वाली जनता राष्ट्र का दूसरा घटक है। तीसरा घटक है उस जमीन पर वहां के लोगों का मालिकाना हक। इन तीन घटकों से राष्ट्र की काया का निर्माण करते होता है परंतु आत्मा के बिना इस जड़ रूपी शरीर में चेतना संभव नहीं। किसी राष्ट्र की आत्मा होती है संस्कृति और यही चौथा घटक है। संस्कृति विहीन राष्ट्र, आत्मा विहीन शरीर की भांति मृतक हो जाता है।

राष्ट्रीय चेतना का अर्थ होता है राष्ट्र के प्रति जागृति की समझ अर्थात् एक ऐसी चेतन अवस्था जिसमें जनता राष्ट्र के महत्वपूर्ण जुड़ावों पर विमर्श करे। इसके कुछ मुख्य घटक हैं – राष्ट्र का महिमा मंडन, अतीत के गौरव के प्रति जुड़ाव, भाषा से जुड़ाव, समानता की भावना, सामान्य राजनीतिक आकांक्षाएं, पर्यावरण के प्रति जुड़ाव, नीतियों के प्रति निष्ठा, आदि।

राष्ट्रीय चेतना जनता को एक सूत्र में बांधने और निजी स्वार्थों से ऊपर राष्ट्रहित आए की भावना को रखने की प्रेरणा देती है। राष्ट्र के प्रति वहां की प्रकृति, सभ्यता, संस्कृति, उन्नति, नीति, ज्ञान, धर्म, भाषा, परिधान, वनस्पति इत्यादि के प्रति मनुष्य का लगाव उसकी राष्ट्रीय चेतना को प्रबल करता है। राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में ऐतिहासिक संदर्भों की विशेष भूमिका रहती है। राष्ट्र के निर्माण में हमारे पूर्वजों की भूमिका, हमारे ऋषि-मुनियों, तपस्वीयों, मनीषियों, योद्धाओं, शिल्पकारों, किसानों, मजदूरों आदि की भूमिका का अहम योगदान होता है। अतीत के गौरवशाली इतिहास को जानने से जनता को प्रेरणा भी मिलती है और वह सचेत भी होती है। जैसे पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, सम्मान, न्याय, सत्य, अहिंसा आदि श्रेष्ठ मूल्यों से जन-जन प्रेरित होता है और ईर्ष्या, अस्तेय, असत्य, घृणा, अन्याय, अंधविश्वास, कुरीति इत्यादि त्याज्य अवगुणों से सचेत भी होता है। राष्ट्रीय चेतना में राष्ट्र की स्वतंत्रता, अखंडता और एकता के साथ-साथ राष्ट्र में समानता, मनुष्यता और शांति के वास्तविक स्वरूप का प्रवाह भी दृश्यमान होता है। दिनकर जी को आग और राग का कवि कहा जाता है क्योंकि उनके भीतर इन दोनों तत्वों का समन्वय करने की अपार शक्ति थी। प्रेम हो या क्रांति दिनकर जी सदैव उनकी मानवता की संकल्पना अतीत से आकर वर्तमान में स्थापित करते थे। यह बात उनके अतीत के गौरव के प्रति उनके प्रेम को उजागर करती है, जिस यथार्थवादी रूप में वे मजदूरों, किसानों, श्रमिकों, दलितों इत्यादि की स्थिति का चित्रण करते हैं वह स्वयं में अत्यंत मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली है। आंदोलन का स्वर इनकी कविताओं में सदैव मुखरित होता दिखता है। आंदोलन भी मात्र विरोध के लिए नहीं अपितु समाज से कुरीतियों को ध्वस्त करने के लिए और पुनः शांति स्थापित करने के लिए। 'कुरुक्षेत्र' सन 1946 में लिखा गया द्वितीय विश्वयुद्ध से ठीक एक वर्ष बाद। इसमें जहां एक तरफ दिनकर जी युद्ध के बाद होने वाली विकट परिस्थितियों का चिंतन करते दिखते हैं वहीं दूसरी तरफ भारत वासियों के भीतर क्रांति का भाव भी भरते दिखते हैं।

दिनकर जी 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र को युद्ध के ग्लानि बोध में ना पड़कर उसके परिणामों के बारे में सोच कर न्याय हेतु उसका वरण करने की प्रेरणा देते नजर आते हैं। 'स्वतव' के लिए किए जाने वाले युद्ध का

महिमामंडन इसलिए आवश्यक है ताकि वास्तविक शांति स्थापित की जा सके और पुनः भारतीय जनता गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, भौगोलिक सीमाओं संसाधनों इत्यादि को सुरक्षित और पुनर्जीवित कर सके। सन 1947 के बाद भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए पाकिस्तान से युद्ध लड़ना पड़ा और राजसूय यज्ञ की भांति ही एकाधिपत्य बनाने के लिए जूनागढ़ और हैदराबाद में भी छोटे-छोटे युद्ध कर उन्हें भारत में विलय किया गया। युद्ध को निंदनीय ही समझा जाता रहा है और शांति को प्रशंसनीय, परंतु दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र में शांति का एक ऐसा रूप लोगों के सामने रखा है जो किसी भी प्रकार के आवरण के तले दबा हुआ नहीं है, एकदम स्पष्ट है। शांति के इस रूप को दर्शाने के लिए दिनकर जी के मन में चल रहा संघर्ष भी साफ दिखाई देता है।

प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति के दो रूप ऐसे ही शांति की भी दो व्याख्या की जा सकती हैं। जिनमें से एक सामान्य है जो प्रशंसनीय है विश्व में सदैव उसका ही वर्चस्व रहा है परंतु शांति का दूसरा पक्ष जो निंदनीय है उसको जनता तक लाने का श्रेय दिनकर जी को जाता है। भीष्म पितामह के माध्यम से वे अर्जुन से पूछते हैं कि तुमने कब से शांति-शांति की रट लगा रखी है परंतु क्या तुम जानते हो कि यदि युद्ध नहीं होता तो किस प्रकार की शांति बनी रहती ? वह एक ऐसी शांति होती जिसकी नींव अनीति पर रखी हुई होती उस माहौल में निर्बलों का धन लूटा जाता, क्षुधितों का ग्रास छीना जाता, पूंजीपति व्यवस्था गरीबों का रक्त पीती और नगर में सैनिक बैठा कर कहती कि सब अच्छा हो रहा है। सब शांत है यहां क्रांति की बातें मत करो। दिनकर जी 'कुरुक्षेत्र' में गांधी को कटघरे में खड़ा करते हैं। उनका कहना था कि सब लोग जियो और जीने दो का सिद्धांत मानते हुए शांति बनाए रखो। सत्ताधारी कभी युद्ध नहीं करना चाहते क्योंकि इससे उनको हानि होगी इसलिए वह सदैव शांति के भजन गाते नजर आते हैं परंतु जहां सत्ताधारी अन्यायी और अविचारी होंगे, जहां नीति युक्त संधि के प्रस्तावों का अनादर होगा, जहां सत्य कहने वालों के शीश उतारे जाएंगे अर्थात उन्हें मृत्यु दंड मिलेगा, जहां जनता के हृदय में क्रोध और विद्रोह की अग्नि जल रही हो, जहां सत्ताधारियों द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार से जनता का शोषण किया जा रहा हो और जहां पग-पग पर सत्य और न्याय के पक्ष में खड़े लोगों का व्यंग्य कस-कस कर अपमान किया जाता हो, वहां यदि उन लोगों के भीतर की चिंगारी भीषण आग का रूप ले लेगी तो क्या इसके उत्तरदायी वे लोग नहीं होंगे जो वर्षों से शोषण करते आ रहे हैं,जो सदैव नीति और अन्याय के मार्ग पर अग्रसर रहते हैं। हमें उन लोगों के बारे में भी सोचना होगा शांति जिनकी अस्तियों को चबा रही है, जिनके रक्त को पी रही है, जिन्हें स्वत्व देने से वर्जित रख रही है। जब तक प्रत्येक मनुष्य की सुख में समान भागीदारी नहीं होगी, जब तक किसी को अधिक और किसी को कम मिलेगा, जब तक एक व्यक्ति पूरे दिन में एक रोटी भी मुश्किल से जुटा पाएगा और दूसरा बादामों को भी अपने श्वानों का आहार बनाएगा, जब तक न्याय और सत्य की नीति लागू नहीं होगी तब तक शांति का महल चाहे कितना भी मजबूत हो वह सुरक्षित नहीं रह पाएगा क्योंकि वास्तविक शांति मनुष्यों के तनों पर नहीं उनके हृदयों पर उनके विश्वासों, श्रद्धा और भक्ति पर राज करती है। ऐसी शांति लाने के लिए ही तुम लोग युद्ध हेतु सज्जित हुए थे और आज तुम्हें उसमें सफलता मिली है। किसी भी प्रकार से तुम्हें इस बात पर ग्लानिबोध नहीं होना चाहिए क्योंकि जहां तुम्हारी पत्नी के वस्त्र उतारकर भरी सभा में उसे अपमानित किया जा रहा था और तुम शांति बनाए रखना चाहते हो वहाँ उस अन्यायपूर्ण शांति से तो अच्छी है क्रांति है। जहां कम से कम न्याय की तो रक्षा हो रही है। इस प्रसंग से तत्कालीन प्रधानमंत्रियों ने भले ही प्रेरणा ना ली हो, भले ही उन्होंने शांति का दामन पकड़ कर राष्ट्र के स्वत्व का वैश्विक पटल पर अपमान किया हो, भले ही उन्होंने कश्मीर और मानसरोवर देकर अपनी कायरता का परिचय दिया हो पर उनके बाद वाले प्रधानमंत्रियों ने इससे सीख लेते हुए ऑप सी.टी.बी.टी कानून की धज्जियां उड़ाते हुए एटम बम का परीक्षण भी किया और भारत की एक इंच भूमि भी नहीं खोने दी। यहां तक कि जब भारत के सैनिकों की शहादत हुई तो दूसरे देशों के भीतर घुसकर एयर स्ट्राइक भी की और अपने युद्ध बंदियों को भी छुड़वाया। भारत ने एक ऐसा समय भी देखा जब नागार्जुन जैसे कवियों को सत्य कहने के लिए आजाद भारत में कारागारों की हवा खानी पड़ी और पंजाब के कवि अवतार सिंह संधु पाश को तो अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। परंतु तब भी दिनकर जी जैसे कवियों ने पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रधानमंत्रियों का हाथ पकड़ उन्हें

बताया कि सत्ता जब-जब डगमगाती है तो कविता ही उसे सहारा देती है। कांग्रेस की नीतियों का विरोध दिनकर जी ने सदन में भी किया और अपनी रचनाओं से भी किया। राष्ट्रीय चेतना के नीति निर्धारण वाले पक्ष पर दिनकर जी ने अपनी कविताओं से सदैव ध्यान केंद्रित किया है।

युधिष्ठिर महाभारत के युद्ध के पश्चात अत्यंत उद्वेलित हो जाते हैं, उन्हें ग्लानिबोध होने लगता है। वह सोचते हैं कि मात्र उनके राज्य लेने के लोभ के कारण ही असंख्य बालक पिता हीन हो गए और असंख्य स्त्रियां पति-पुत्र हीन हो गई। जिस तरफ भी दृष्टि पड़ती है मृत्यु का अर्थ नाथ सुनाई देता है। 'देश' शब्द का प्रयोग 'कुरुक्षेत्र' में 'राष्ट्र' के संदर्भ में ही किया गया है जिसके बारे में सोचते हुए युधिष्ठिर कहते हैं -

"ईश जाने, देश का लज्जा विषय
तत्व है कोई कि केवल आवरण"[1]

"शोणित बहा लेकिन गई बच लाज सारे देश की"[2]

ऐसे विचार उन्हें इसलिए आ रहे थे क्योंकि उन्हें अपने कृत्यों पर पश्चाताप हो रहा था। वे अत्यंत मानवतावादी हो गए थे। उन्हें लगने लगा था कि नैतिकता इसी में है कि मनुष्य परस्पर प्रेम से रहें और यदि एक व्यक्ति दूसरे के हक को खाए तो भी वह उससे युद्ध ना करें क्योंकि ऐसा करने से नैतिकता का हनन होगा और शांति स्थापित नहीं रह पाएगी। देश की लाज बचाने के लिए जिन माताओं ने अपने पुत्रों को बलिदान की वेदी पर चढ़ा दिया उनके नाम गर्व से लिए जाते हैं। जिन स्त्रियों ने अपनी मांग के सिंदूर को मिटा देश के भाल को तिलकित किया, उन्होंने देश की इज्जत को बचा लिया। परंतु युधिष्ठिर को लगता है कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था वह स्वयं को दोष देते हुए कहते हैं -

"पांच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे देश का।"[3]

शोषक वर्ग द्वारा बनाई जाने वाली ऐसी शांति पर करारा व्यंग्य करवाते हुए दिनकर जी भीष्म पितामह से कहलाते हैं -

"पातकी न होता प्रबुद्ध दलितों का खड्ग
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रांति है।
शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शांति
युद्ध है, यथार्थ में वो भीषण अशांति है।"[4]

एक प्रश्न हम सबको भी स्वयं से पूछना चाहिए जो दिनकर जी भीष्म पितामह के माध्यम से युधिष्ठिर से पूछते हैं -

"पापी कौन ? मनुज से उसका
न्याय चुराने वाला ?
या की न्याय खोजते विघ्न का
सीस उड़ाने वाला ?"[5]

दिनकर जी यह का मानना है कि 'स्वत्त्व' और 'न्याय' की रक्षा हेतु व्यक्ति को यदि व्यक्ति को हिंसा का सहारा लेना पड़े तो वह ठीक है। भारतीय संविधान में भी कानून व्यवस्था द्वारा नागरिक भी अपने सम्मान की रक्षा हेतु इसका सहारा ले सकते हैं। आईपीसी की धारा 96 से 106 तक इसका प्रावधान है। जिसके अनुसार हर व्यक्ति को अपनी सुरक्षा, अपनी पत्नी की सुरक्षा, अपने बच्चों की सुरक्षा, अपने करीबियों और अपनी संपत्ति की सुरक्षा करने का अधिकार है। यही बात 'कुरुक्षेत्र' में भी कही गई है जब कोई हमारे स्वत्त्व को छीन रहा हो तो उस समय तप-त्याग से काम लेने के स्थान पर उस छीनने वाले हाथ को विछिन्न कर देना ही पुण्य का काम है। मात्र अपने लिए तो मनुष्य अपमान का गर ल पीकर भी रह सकता है परन्तु समुदाय के प्रति उसके कुछ कर्तव्य बनते हैं। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हुए कहते हैं कि तुमने कुछ भी गलत नहीं किया है -

"व्यक्ति का है धर्म तप करुणा क्षमा
व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी
किंतु उठता प्रश्न जब समुदाय का
भूलना पड़ता हमें तप त्याग को"[6]

शोषक वर्ग कभी भी शांति की चिंता नहीं करता। नैतिकता और न्याय की बातें उनके लिए एक मजाक से अधिक और कुछ भी नहीं हैं। तीन दिवस तक मार्ग मांगने के पश्चात भी समुद्र ने श्री राम की विनती नहीं सुनी परंतु मात्र एक बार धनुष को प्रत्यंचा पर तीर रखकर जैसे ही श्री राम ने उसे सुखाने की बात कही, तुरंत वह प्रस्तुत हो गया। अपने आसपास भी यदि हम देखें तो अमूमन यही देखने को मिलता है, शांतिप्रिय और नम्र स्वभाव वाले व्यक्ति को डरपोक ही समझा जाता है। 'कुरुक्षेत्र' में भी यह बात कही गई है -

"मगर यह शांतिप्रियता रोकती केवल मनुज को ,
नहीं वह रोक पाती है दुराचारी दनुज को।
दनुज क्या शिष्ट मानव को कभी पहचानता है ?
विनय को नीति कायर की सदा वह मानता है।"[7]

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हैं, विश्व में कोई भी व्यक्ति ने अहंकार को खोना नहीं चाहता। कोई नहीं

चाहता कि उसे किसी अन्य सत्ता के नीचे रहकर जीना पड़े। तुम्हारे ध्वज के नीचे जितने राजा आए, वह सब प्रेम पूर्वक नहीं आए। उनमें से कुछ श्री कृष्ण के प्रति अपने भक्ति भाव से आए और कुछ तलवार के भय से, तुम्हारे राजसूय यज्ञ ने बहुत से छोटे-छोटे राजाओं का, शूरवीरों का, बल वैभव वाले व्यक्तियों का अपमान किया है। यद्पी इस कार्य के पीछे का उद्देश्य श्रेष्ठ था । श्री कृष्ण राजसूय यज्ञ के द्वारा तुम्हें संपूर्ण पृथ्वी का सम्राट बनाना चाहते थे ताकि अखंड राष्ट्र की परिकल्पना पूर्ण हो सके और पृथ्वी पर सभी पुनः शांति से रहें, आपस में प्रेम और सौहार्द बना रहे। राजा की क्या आवशयकता है ? न्याय कैसे सुरक्षित रहेगा ? आपसी कलह को कौन शांत करवाएगा ? युद्ध में बहने वाले रक्त को कौन रोकेगा ? इ न सब प्रश्नों के उत्तर देते हुए भीष्म कहते हैं -

"नृपति चाहिए, क्योंकि परस्पर
मनुज लड़ा करते हैं।
खड्ग चाहिए, क्योंकि न्याय से
वे न डरा करते हैं।
नृपति चाहिए, जो कि उन्हें
पशुओं की भांति चलाए।
रखे अनय से दूर, नीति नय
पग-पग पर सिखलाये।"[8]

"नृप चाहिए, नरों को, जो समझे उनकी नादानी,
रहे छींटता पल-पल पारस्परिक कलह पर पानी।
नृप चाहिए, नहीं तो आपस में वे खूब लड़ेंगे।
एक दूसरे के शोणित में लड़कर डूब मरेंगे।"[9]

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को यही बात समझाते हैं कि सभ्यता, संस्कृति, भाषा, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समानता लाने हेतु एक आधिपत्य की आवश्यकता पड़ती है, एक राजा की आवश्यकता पड़ती है। आज के परिपेक्ष में वह राजा केंद्रीय सत्ता का पर्याय है जो संवैधानिक लोकतंत्र से चुनाव जीतकर प्रधानमंत्री बनता है। परन्तु इतना समझाने पर भी युधिष्ठिर समझते नहीं और भीष्म पितामह से पुनः प्रश्न करते हैं -

"नर-नाश का दायी था कौन ? सुयोधन
याकि युधिष्ठिर का दल ? बोलिए।"[10]

उत्तर देते हुए भीष्म पितामह कहते हैं कि एक भ्रष्ट राजा के विरुद्ध युद्ध कर उसको परास्त करके न्याय पूर्ण राज्य की स्थापना करना गलत नहीं है धर्मराज। वे कहते हैं -

"रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या
शमित होगा नहीं वह मिष्ठान से"[11]

"चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है ,
युधिष्ठिर ! स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।
नरक उनके लिए, जो पाप को स्वीकारते हैं ;
ना उन हेतु जो रण में उसे ललकारते हैं"[12]

दिनकर जी भारत में एक ऐसा शासन देखना चाहते हैं जहां सभी व्यक्ति समान हों, जहां जातिगत आधार पर भेदभाव ना हो, जहां कोई किसी का हक ना खाए, जहां वास्तविक शांति का वास हो। इसकी परिकल्पना 'कुरुक्षेत्र' में वे इस प्रकार करते हैं -

"वह लोक जहां शोणित का ताप नहीं है ,
नर के सिर पर रण का अभिशाप नहीं है।
जीवन समता की छांव तले पलता है ,
घर-घर में पीयूष प्रदीप जलता है।"[13]

ईश्वर के माध्यम से यह प्रश्न दिनकर जी अपने पाठकों से पूछते नजर आते हैं कि कब भारत में अमन शांति और समानता आएगी -

"साम्य कि वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण।"[14]

निष्कर्ष

किसी भी रचना में राष्ट्रीय चेतना हेतु जो घटक अनिवार्य होते हैं उन सब का समावेश 'कुरुक्षेत्र' में भी देखने को मिलता है। एक ऐसे समय में यह प्रबंध काव्य रचा गया जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था जहाँ एक तरफ गरम दल के नेता सशस्त्र क्रांति लाने हेतु प्रयासरत थे वहीं दूसरी तरफ नरम दल के नेता शांति-पूर्वक अनशन करके भारत को आजाद करवाना चाहते थे। ऐसे में जनता को मानसिक रूप से तैयार करने का प्रयास इस रचना द्वारा दिनकर जी ने किया है। इस में शांति और क्रांति दोनों विचारों के मध्य निरंतर संघर्ष चलता दिखता है। दिनकर जी ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में स्वयं कहा है कि 'कुरुक्षेत्र' विचारोत्तेजकता का काव्य है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाने में सफल होते हैं। उनका कहना प्रासंगिक की जान पड़ता है कि देह को मन में विलीन करना चाहिए मन को देह में नहीं। भूमिका में ही दिनकर

जी कहते हैं – "आत्मा का संग्राम आत्मा से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है।"[15]

मनुष्य जीवन को परिभाषित करते हुए दिनकर जी कहते हैं-

"फूलों पर आंसू के मोती, और अश्रु में आशा,
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी तुली परिभाषा।"[16]

जिस 'स्वत्व' हेतु युद्ध करने की बात दिनकर जी अपनी रचना 'कुरुक्षेत्र' में कहते हैं। वही बात कालांतर में सन 1951 में भारतीय संविधान में भी आत्म-रक्षा कानून के रूप में कही जाती है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि दिनकर जी मात्र आग और राग के ही कवि नहीं थे वे त्रिकाल दर्शी, कलजेयी और राष्ट्रवादी कवि भी थे।

सन्दर्भ

1. नवल, नंदकिशोर एवं कुमार, तरुण (सं.), दिनकर रचनावली (भाग – 5), लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2022, पृष्ठ 57
2. वही, पृष्ठ संख्या – 57, सर्ग - 1
3. वही, पृष्ठ संख्या – 61, सर्ग - 1
4. वही, पृष्ठ संख्या – 82, सर्ग - 3
5. वही, पृष्ठ संख्या – 85, सर्ग - 3
6. वही, पृष्ठ संख्या – 70 सर्ग - 2
7. वही, पृष्ठ संख्या – 87, सर्ग - 4
8. वही, पृष्ठ संख्या – 145, सर्ग - 7
9. वही, पृष्ठ संख्या – 146, सर्ग - 7
10. वही, पृष्ठ संख्या – 120, सर्ग - 5
11. वही, पृष्ठ संख्या – 69, सर्ग - 2
12. वही, पृष्ठ संख्या – 86, सर्ग - 4
13. वही, पृष्ठ संख्या – 113, सर्ग - 5
14. वही, पृष्ठ संख्या – 130, सर्ग - 6
15. वही, पृष्ठ संख्या – 55
16. वही, पृष्ठ संख्या – 168, सर्ग - 7

कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना

* डॉ. सुभाष कुमार

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, बी. एम. डी. कॉलेज, दयालपुर (वैशाली), बिहार।

इस विषय पर अपनी बात करने से पूर्व दिनकर, दिनकर के साहित्य, दिनकर की रचना 'कुरुक्षेत्र', राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना को जानने का प्रयास किया जाएगा। इसके बाद कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना को देखने का प्रयास किया जाएगा। इसके अतिरिक्त इस शोध विषय के अंतर्गत राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में कर्म, परिवर्तनशील राष्ट्रीय चेतना में जल संकट और राष्ट्रीय एकता के निर्माण में क्षमा को बताने का प्रयास किया जाएगा। इस शोध पत्र का उद्देश्य है- इतिहास से सीख लेकर वर्तमान समस्या के समाधान के साथ बेहतर भविष्य का निर्माण करना।

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हैं । इनका जन्म- 23 सितम्बर, 1908 ई. को सिमरिया (जिला मुंगेर) में हुआ था और मृत्यु- 24 अप्रैल, 1974 ई. को हुई थी । दिनकर को जानने के बाद अब इनके काव्य को देखते हैं तो पाते हैं कि ये अपनी कविता- जनतंत्र का जन्म [26 जनवरी, 1950 ई.] में लिखते हैं -

" हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती ,
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है ;
जनता की रोके राह , समय में ताव कहाँ ?" [1]

इस कविता से हम जनतंत्र के बारे में दिनकर के विचार को समझ सकते हैं। इनका मानना था कि जनतंत्र में जनता की रास्ता को समय भी नहीं रोक सकता है। दिनकर की प्रसिद्ध रचना 'कुरुक्षेत्र'(1946 ई.) है। यह पुस्तक सात सर्ग में विभक्त है। इस पुस्तक के प्रथम सर्ग में राष्ट्रीय चेतना को देखा जा सकता है जो इस प्रकार है-

"गयी बच लाज सारे देश की?'' [2]

इस पद में सम्पूर्ण देश की सम्मान की बात को दिनकर ने प्रस्तुत किया है जो व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावना को जगाता है।

राष्ट्रीय चेतना को समझने से पहले राष्ट्र को समझना चाहिए। राष्ट्र के विषय में विद्वानों का मानना है कि राष्ट्र बहुत हद तक एक 'काल्पनिक' समुदाय होता है जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र में बंधा होता है। एक राष्ट्र का अस्तित्व तभी कायम रहता है जब उसके सदस्यों को यह विश्वास हो कि वे एक-दूसरे के साथ हैं।

अब राष्ट्रीय चेतना को समझने की कोशिश करते हैं तो पाते हैं कि राष्ट्रीय चेतना तब पनपती है जब लोग ये महसूस करने लगते हैं कि वे एक ही राष्ट्र के अंग हैं। किसी भी राष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना के विकास में इतिहास व साहित्य, लोक कथाएँ व गीत, चित्र व प्रतीक का महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार किया जाता है। राष्ट्रीय चेतना निरंतर परिवर्तनशील होती है।

जब शोध विषय- कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय चेनता, पर ध्यान देते हैं तो 'कुरुक्षेत्र' में जो राष्ट्रीय चेतना प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है- हम जानते हैं कि सभी राष्ट्र का अपना ध्वज होता है। यह ध्वज एकता के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारे राष्ट्र भारत का राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा है। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने ध्वज के बारे में लिखा है-

"सभी तुम्हारे ध्वज के नीचे
आये थे न प्रणय से,
कुछ आये थे भक्ति-भाव से,
कुछ कृपाण के भय से।" [3]

इस पद में दिनकर ने बताया है कि राष्ट्रीय ध्वज को सभी ने स्वीकार किया है। कुछ ने प्रेम से स्वीकार किया है और कुछ ने भय से स्वीकार किया है। 'कुरुक्षेत्र' में ध्वज का उल्लेख राष्ट्रीय चेतना है क्योंकि कोई भी राष्ट्र ध्वज के अभाव में राष्ट्रीय चेतना का निर्माण नहीं कर सकता है। आज तिरंगा ध्वज भारत के राष्ट्रीय चेतना के रूप में मौजूद है जो सम्पूर्ण विश्व में भारत की अलग पहचान कराता है।

राष्ट्रीय चेतना के रूप में ध्वज को जानने के बाद कर्म को जानना जरूरी हो जाता है क्योंकि ध्वज से राष्ट्र का निर्माण होता है लेकिन कर्म के अभाव में राष्ट्र का पतन भी हो जाता है। इस कारण राष्ट्रीय चेतना के केंद्र में कर्म होता है। 'कुरुक्षेत्र' में कर्म के विषय में दिनकर ने लिखा है-

"कर्मठ मनुष्य का
पथ संन्यास नहीं है,"[4]

इस पद में दिनकर ने राष्ट्र के लिए कर्म का समर्थन और संन्यास का विरोध किया है। यहाँ 'कुरुक्षेत्र' में कर्म का समर्थन ही राष्ट्रीय चेतना है क्योंकि कर्म के अभाव में राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था समाप्त हो जाती है।

राष्ट्र में लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए मुख्य रूप से सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता है। यह व्यवस्था लोगों को जिंदा रखने के लिए आवश्यक होती है। हम जानते हैं कि मनुष्य को जिंदा रहने के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व जल है। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने लिखा है-

"भू से ले अम्बर तक यह जल
कभी न घटने वाला"[5]

इस पद में दिनकर ने बताया है कि पृथ्वी पर जल अर्थात् पानी की कमी कभी भी नहीं होगी। आज हम सब यह महसूस करते हैं कि जल संकट प्रारंभ हो गया है। इस संकट को हम अपने-अपने घरों में पीने योग्य शुद्ध जल की स्थिति से जान सकते हैं। दिनकर के समय में राष्ट्र की आजादी महत्त्वपूर्ण थी, लेकिन जल संकट नहीं था। इस शोध पत्र में पहले बताया गया है कि राष्ट्रीय चेतना परिवर्तनशील होती है। पहले आजादी को राष्ट्रीय चेतना के रूप में स्वीकार करना अधिक महत्त्वपूर्ण था, लेकिन अब राष्ट्र के लोगों के लिए पीने योग्य शुद्ध जल उपलब्ध कराना ही राष्ट्रीय चेतना है। वर्तमान में हम सभी बंद बोतल और फिल्टर जल (पानी) का उपयोग कर रहे हैं।

'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्रीय चेतना जानने के क्रम में हम ध्वज, कर्म और जल को जानने के बाद अब क्षमा पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि राष्ट्र के अंदर लोगों में राष्ट्रीय चेतना के निर्माण के लिए सार्थक क्षमा का होना भी जरूरी है। इस सम्बन्ध में 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर ने लिखा है-

"क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या, जो दंतहीन,
विषरहित, विनीत सरल हो ?"[6]

इस पद में दिनकर ने क्षमा को महत्त्वपूर्ण माना है। क्षमा से राष्ट्र में लोगों के आपसी सम्बन्ध मजबूत होता है। यह सम्बन्ध राष्ट्र में एकता स्थापित करता है जो राष्ट्रीय चेतना के लिए आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर की यह बात बहुत गहरे जीवन अनुभव की उपज है। इस बात को ध्यान में रखकर हम सभी को अपना जीवन बेहतर से बेहतरीन बनाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. 'चक्रवाल', रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ संख्या: 352.
2. कुरुक्षेत्र, दिनकर, पृष्ठ संख्या: 5
3. कुरुक्षेत्र, दिनकर, पृष्ठ संख्या: 36
4. कुरुक्षेत्र, दिनकर, पृष्ठ संख्या: 94
5. कुरुक्षेत्र, दिनकर, पृष्ठ संख्या: 78
6. कुरुक्षेत्र, दिनकर, पृष्ठ संख्या: 25

राष्ट्रकवि दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

* संजु शर्मा

* शोधार्थी, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार।

राष्ट्रकवि दिनकर अपने नाम को अक्षरसः सिद्ध करते नजर आते हैं। 'दिनकर' से अभिप्राय है 'दिन' अर्थात् 'उजाला', 'कर' अर्थात् करने वाला अथवा लाने वाला। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि, मैथिल कोकिल विद्यापति के लम्बे अरसे बाद बिहार की उर्वरक भूमि में 'दिनकर' नामक अंकूर ने न सिर्फ हिन्दी साहित्य जगत को पुष्पित पल्लवित किया बल्कि, सम्पूर्ण साहित्य जगत को युगान्तकारी रचनाओं से स्मृद्ध भी किया।

ऐसे महान विभूति का जन्म 23 सितम्बर 1908 में बिहार के सिमरिया घाट नामक स्थान में हुआ। यूँ तो कविवर ने साहित्य जगत् को अपनी अनेकों कृतियों से अलंकृत किया, जिनमें प्रमुख 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'रेणुका', 'रसवंती', 'परशुराम की प्रतिक्षा', 'उर्वशी' आदि हैं। किन्तु 1972 ई0 में इन्हें 'उर्वशी' रचना के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार भी दिया गया। वहीं, 'संस्कृति के चार अध्याय' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। ऐसे महान विभूति की मृत्यु 24 अप्रैल 1974 ई0 में हुई जो साहित्य जगत् के लिए अपूर्णीय क्षति समान रही।

आधुनिक युग में हिन्दी काव्य में पौरूष का प्रतीक और हिन्दी काव्य की आत्मा 'रामधारी सिंह दिनकर' की काव्यों में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी हुई थी। तत्कालीन समाज अंग्रेजों की दासता से युक्त था। किन्तु भारत में आंग्ल शासन व्यवस्था आक्सीजन के सहारे जैसे आई0सी0यू0 में अपनी अंतिम साँसे गिनने को मजबूर थी। यह सर्वथा सत्य है कि, तत्कालीन जनसमाज की लगभग मृतप्राय जनता में चेतना की हुँकार भरने का दायित्व तत्कालीन कवियों एवं लेखकों ने बखूबी निभाई।

जब सारा समाज क्रांति की लहरों में हिलोरें ले रहा था, कवियों की लेखनी शब्दरूपी क्रांतिकारिक आग फूँक कर मुर्दे में जैसे प्राण फूँक रहे थे, दिनकर तो थे ही 'दिनकर'। वे भला कैसे अछूते रहते? उन्होंने चीन से युद्ध के समय भी अपनी रचना 'परशुराम की प्रतिक्षा' के माध्यम से भारतीय सैनिकों को अहिंसा त्यागकर पौरूष दिखाने का आह्वान कर युग धर्म का भलि-भाँति निर्वाहन किया। उन्होंने अपनी इस कविता में लिखा -

वैराग्य छोड़ बाहों की विभा संभालो,
चट्टानों की छाती से दूध निकालो
है रूकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,
पीयूष चन्द्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुम शैल शिखरों पर सोम पियो रे,
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे।

इस प्रकार दिनकर सुसुप्त भारतीय सैनिकों के हृदय में क्रांति और ज्वाला के ओज भरने का कार्य अपनी रचना में करते नजर आएँ हैं। उन्होंने अपनी काव्य चेतना के विषय में स्वयं ही लिखते हुए कहा है:-

क्रांति-धात्रि कवित्े!
उठ अंबर में आग लगा दे।
पतन, पाप, पाखण्ड जले,
जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।

वस्तुतः, दिनकर प्रेम, राष्ट्रीयता और क्रांति के ओजपूर्ण गायक हैं। उनकी कविताओं में राष्ट्रव्यापी जागरण के स्वर व्याप्त हैं।

कविवर दिनकर ने ओजस्वी शब्दों में राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में अतीत का भी गान किया है। 'रेणुका' में संकलित 'हिमालय' कविता में वे कहते हैं।

तू पूछ अवध से, राम कहाँ?
वृन्दावन घनश्याम कहाँ
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?
री कपिलवस्तु! कह बुद्ध देव के
ये मंगल उपदेश कहाँ?

स्पष्ट है कि, उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में कविवर ने जड़त्व को प्राप्त युवा पीढ़ी को अपनी चेतनावस्था में पुनः लौटने एवं पुरूषार्थ करने हेतु अतीत का आलम्बन दिया है। दिनकर की लेखनी शब्द नहीं निकालती थी। उनकी लेखनी प्रचण्ड अग्नि की वह धधकती ज्वाला निकालती थी, जो मृत में भी सर्वथा प्राण फूँकने का कार्य करते थे। वे अत्यंत संवेदनशील कवि थे। उनकी चेतना राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थी। उन्होंने तत्कालीन समाज में युवा पीढ़ियों की मनोभूमियों का नवसृजन का कार्य किया। जन-मानस में चेतना, उर्जा तथा ओजस्व को भरने का कार्य सहज ही किया। ऐसे महान विभूति जन्म तो ले लेते हैं लेकिन अपनी रचनाओं के माध्यम से सभ्यता, संस्कृति, आदर्श, ओजत्व एवं चेतना के रूप में हमेशा के लिए अमरत्व को प्रदान कर लेते हैं।

सन्दर्भ

1. दिनकर एक शताब्दी - डा0 दिनेश
2. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा0 नागेन्द्र

राष्ट्रकवि दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

* डॉ. इंदिरा वी.

* प्रेसीडेंसी महाविद्यालय, बेंगलूरू

आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि रामधारी सिंह दिनकरजी एक महान कवि, लेखक एवं निबंधकार हैं। राष्ट्रकवि के खिताब से सम्मानित दिनकरजी एक विद्रोही के रूप में हमारे सामने आते हैं। इनकी कवताओं में ओज, आक्रोश, चेतावनी, क्रांति की घरघराहट हैं। रिणुका, हुंकार, रसवंती, कुरूक्षेत्र ने साहित्य जगत को सुशोभित किया। इनकी रचनाओं में कर्म, उत्साह, पौरूष और उत्साह है। प्राचीन आदर्शों एवं मूल्यों के द्वारा इन्होंने राष्ट्रीय जागरण को उभारा है। स्वतंत्रता के उपरांत भी जनमानस में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विशमताओं को नीम के पत्ते, परशुराम की प्रितग्या में चित्रित किया है।

इतिहास के आंसू, रेणुका,हुंकार जैसी कविताओं में विद्रोह के स्वर उभरते हैं। जब भी देश के हित-अहित की बात आती थी, वे अपनी बुलंद आवाज को मुखरित करनें में नही चूकते थे। शोषण का प्रतिकार करने का समर्थन करते थे।

राष्ट्रीयता मनुज की सहज प्रव्रुत्ति है। इसके द्वारा इंसान देश के प्रति अपनापन महसूस करता है। राष्ट्र की सुरक्षा, विकास, कल्याण की सोच हर इंसान के लिए परम आवश्यक है। इससे मन को सन्मार्ग पर गतिमान करने की सीख मिलती है। दिनकरजी ने अपनी कविताओं की पंक्तियों के द्वारा कहा है-वैराग्य छोडों, चट्टानों को गले से लगाओं, शिलाऐ तोडों, शैल पर चढ अमृत पियो, योगी की तरह न होकर विजयी की त्रह जियो।

कवि ने हिमालय के मानवीकरण के द्वारा इंसानों को हिमालय की त्रह मज्सबूत बनने की सीख दी है। आग की भीख कविता में देश की दयनीय स्ठिति का वर्णन किया है। इन्होंने ईश्वर से देश के युवकों में उमंग भरने की प्रार्थना करते हइनकी राष्ट्रीयता पर इनके युग का प्रभाव पडा है। देश की छोटी सी समस्या भी दिनकरजी के स्पर्श से वंचित नही रही। सिंहासन खाली करों इन पंक्तियों के द्वारा कहा कि जनता आ रही है, जन प्रतिनिधि को चेतावनी देते है।

हुंकार के प्रकाशन से इन्हें यश प्राप्त हुआ। प्रबंध्काव्य कुरूक्षेत्र में महाभारत के शांतिपर्व की कथा पर आधारित है। इनका दूसरा प्रबंधकाव्य रश्मिरथी है जो दानवीर कर्ण के चरित्र पर आधारित है। इसमें कवि ने समाज द्वारा प्रताडित त्यक्त एवं दलितों के बीच नई चेतना जगाते हुऐ उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सावधान किया है। परशुराम की प्रितग्या में कवि ने राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए भारतीय जनता के शौर्यभाव को जगाने के लिए अत्यंत अओजभाव से युक्त वाणी का प्रयोग किया है। हारि को हरिनाम दिनकर्जी की अंतिम रचना है।

इनकी गद्य क्रुतियों में संस्क्रुति के चार अध्याय सर्वाधिक विराट ग्रंथ है। बुद्धदेव कविता में कवि ने भगवान बुद्ध की महिमा का वर्णन किया है। बुद्धदेव ममता का बंधन तोडकर विश्व की मुक्ति के लिऐ अपना सब कुछ त्यागकर निकल पडे थे। उन्होंने स्वयं विष पीकर इस विश्व को जीवन दिया। दिनकरजी ने बुद्धदेव कविता के द्वारा कहा है कि आज दीन दुखियों पर अत्याचार बढ्ता जा रहा है। धन पिशाच की विजय हो रही है और मानवता गायब हो रही है। दीन दुखियों क बचाव किस तरह किया जाए। अपने बोधिसत्व को जगाओ आज भारत के हरिजन तुम्हें बुला रहे है।

हिंदुस्तान की आत्मा को जगाने में दिनकर की कविताओं ने शंखध्वनि का काम किया है। भीष्म संदेश

कवि के द्वारा रचित इस कविता में कवि ने महानानवतावाद की प्रतिष्ठा की है। पितामह भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते है कि तुम्हें मिट्टी की यह जिम्मेदारी संभालनी होगी। यह धरती कर्म-भूमि है मानव को धरतीपर अपनी जिम्मेदारी उठानी होगी और कर्तव्य करना होगा। ऊपर सब कुछ शून्य है वहां कुछ नही है जो कुछ है धरती में है। सामान्य नियम के अनुसार मनुष्य सब कुछ यही प्राप्त करता है। मनुष्य अपनी साधन्स्स और क्षमता से स्वर्ग को भी नीचे ला सकता है। स्वच्छ मन में परहित हेतु भावना हो, और त्याग की भावना हो। मनुष्य के श्रीर प्र जिस देन मन का अधिकार होगा उसी दिन लोग अपने भोग विलास का जीवन त्याग करने को व्यग्र हो जाऐंगे। कवि के अनुसार सोना, संपत्ति, अधिकार ये सब मनुष्यता के पतन के कारण बनते है।

किसको नमन करूं मैं इस कविता में कवि ने भारतमाता के सौंदर्य का बखान करते हुए कहते है कि हे मां तेरी नदी, गिरि एवं वन की महिमा अपरमपार है। तेरे देह को नमन करूं या तेरे मन को। तुम मानचित्र पर अंकित त्रिभुज हो, तुम मान के संकल्प का उदाहरन हो। तुममें अनेक भेद है। तुम्हारी जडता में भी चेतना है। यहां हर संदेश अंबर से आता है अर्थात यहां सच्चाई का भरमार है। मां काद्यान मन को सुरभित कर देता है। थकी हुई आत्मा मे भी उडान भरने की उमंग जग उठ्ती है। यहा का उपवन गंध निकेतन है। यहां मनुज को मनुज से भय नही। झंडों के नीचे लोग बंटे हुए नही है। यहा समरसता की भावना है। नर-नारी का भेद नही है। यहां के मानव में गुणों का भंडार है। भारत संपूर्ण विश्व की शान है। भारत सवयं ही एक भास्कर है। दो द्विपों के बीच भारत सेतु का निर्माण करता है। यानि लोगों की दूरियां मिटाता है। दो दिल को जोडता है।

राष्ट्रीयता देश के प्रति संवेदनशील घनिष्ठ संबंध होता है। दिनकरजी ने भी आशा के दिये को प्रज्वल्लित किया और कहा कि स्वतंत्रता का फ़ूल खिलकर ही रहेगा और सुखों की वर्षा होकर ही रहेगी। भारतीयों को श्रम और साधना का पाठ पढाया। कविहिमालय से प्रार्थना करते और कहते है कि तुम शिवजी से निवेदन करो और कहो कि वे पुन: एकबार तांडव करें और भारत में बम-बम की ध्वनि गूंजे।

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां
जाने दे उनकी स्वर्ग धीर,
पर, फ़िरा हमें गांडीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।
कह दे शंकर से, आज करें
वे प्रलय-नृत्य फ़िर एक बार।
सारे भारत में गूंज उठे,
हर-हर, बम-बम का फ़िर महोच्चार।

दिनकरजी के अनुसार राष्ट्रीयता के लिए सांस्कृतिक एकता अनिवार्य है राष्ट्रीय चेतना में देश की एकता, अखंडता एवं स्वतंत्रता की पावन-त्रिवेणी का प्रवाह होता है। युद्ध के समय कविवर दिनकर ने देश के पौरूष को जागृत करते हुए सिंह गर्जना की-

वैराग्य छोड बांहों की विभा संभालो.
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रूकी जहां भी धार, शिलाऐ तोडों
पीयूष चंद्रमाओंको पकड निचोडों।
चढ तुंग शैल शिखरों पर सोम पियो रे,
योगियों नही, विजयी के सदृश जियो रे।

फ़ूलेंगी डालो में, तलवार और सरहद के पार कविताओं में आजाद हिन्द सेना के बलिदान और वीरता की कहानी लिखी गई है। वज्रपात कविता में कवि ने गांधी की निर्मम ह्त्या को प्रकट किया है। मेरे स्वदेश कविता में कवि विवशता का चित्रण करते हुऐ कहते है

यह विकट भास! यह कोलाहल! इस वन में मन उकसाता है।
भेडिये ठठाकर हंसते हैं मनु का बेटा चिल्लाता है।

भारत-भूमि की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है कि

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नही, शील यह भू-मंडक भर का है।
जहां कहीं एकता अखंडित, जहां प्रिम का स्वर है,
देश-देश में वहां खडा, भारत जीवित भास्वर है।

जनतंत्र का जन्म इस कविता में कवि ने देश के शासकों को आडे हाथ लिया है वे बडे विश्वास के साथ कहते हैन कि सदियों की बुझी राख आज सुगबुगा उठी है। आज नेता को सिंहासन खाली करनी पडेगी क्योंकि अब जनता का राज चलेगा। आजतक जनता ने झूठे कसमों को सही माना किंतु जनता को अब सच्चाई का आभास हो गया है। जनता की हुंकार एवं मनोबल से महलों की नींव उखडने वाली है। आज जनता का विराट जगत हमारे सामने है। कवि के अनुसार तैंतीस कोटी सिंहासन को तैयार करना होगा। आज सही मायने में हमारे देवता हमारी

जनता, किसान एवं मजदूर है उनके हल एवं फ़ावडे हमारी धरती का श्रृंगार है। जनता आज के समय की जनार्धन है।

नेता नही नागरिक चाहिए, इस निबंध में लेखक कहते है कि आजादी के बाद जब देश के सारे काम नेताओं के हाथ में आ गए, तब उन्हें पता चला कि देश ने सिरफ़ नेता ही पैदा किए है नागरिक नही। देश में नेताओं को व्याख्यान देने की आदत पड गई है। हर कोई दूसरे को उपदेश देना चाहता है पर उस पर कोई अमल नही करना चाहता। आज हिंदुस्तान बुरी त्रह एसे नेताओं को भुगत रहा है। नेताओं से भरा देश कोई अच्छा देश नही हो सकता। सब लोग आपस में बराबर है इस बात का लोगों ने गलत अर्थ लगा लिया है। इसका असली अर्थ है सबलो विकास का समान अवसर मिलें, न कि प्रतीक्षा किए बिना जो जहां चाहे वहां इच्छा मात्र से पहुंच जाए। लोग समझते है जिंदगी का असल मजा काम करना नही, हुक्म चलाना है। जो इंसान अनुभव के दौर से होकर गुजरने से इंकार करता है और मेहनत की जगह आराम चाहता है वह अपने संगठन का अच्छा नेता नही बन सकता। समाज को योग्य नागरिकों की आवश्यकता है नेताओं की नही।

दिनकरजी का विचार है कि स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी कुछ न्यौछावर कर देने तथा अपना बलिदान कर देने की प्रेरणा देते है।

दासत्व जहां है, वही स्तब्ध जीवन है।
स्वातंत्र्य निरंतर समर, सनातन रण है।

इसतरह हम दिनकरजी को पौरूष का प्रतीक एवं राष्ट्र की आत्मा का गौरव गायक कहते है। विश्व कल्याण की महती भावना भी इनकी रचनाओं में मिलती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कहानी सप्तक-डा.एम.विमला, प्रसारांग, बेंगलूरू
2. काव्य गुलशन-डा.सबिहा, प्रासारांग, बेंगलूरू
3. काव्यांजलि-डा. टी. रवींद्रन, बसंत बुक हाउस
4. गद्य-नवनीत-डा.एम विमला, प्रसारंग, बेंगलूरू

दिनकर-साहित्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना

* प्रतीक कुमार

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कमलेश्वरी प्रसाद महाविद्यालय, मुरलीगंज, बिहार-852122

हिंदी प्रदेशों में कविता के माध्यम से जन जागरण और क्रांति उत्पन्न करने वाले कवियों में दिनकर का स्थान अग्रणी है। महात्मा गांधी के सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन के समय जो कवि अपनी ओजस्वी वाणी को राष्ट्रीय उत्थान के लिए प्रयोग कर रहे थे,दिनकर उनमें अग्रणी थे,जब कभी हिंदी की राष्ट्रीय कविता का इतिहास लिखा जाएगा दिनकर की कविताओं से उसका कलेवर निर्मित होगा। दिनकर शुद्ध अहिंसावादी सत्याग्रही व्यक्ति नहीं थे ।अपनी मान्यताओं के अनुकूल उन्होंने परतंत्रता के पास छिन्न-भिन्न करने के लिए अतीत गौरवगान के साथ वीर रस की शौर्यपूर्ण रचनाओं को अपनाया था दिनकर राष्ट्र वीणा का ओजस्वी स्वर है :- प्रो० विजेंद्र स्नातक

दिनकर हिंदी साहित्य में ओज और पौरूष के कवि माने जाते हैं ।आधुनिक काव्य के ओजस्वी कवि और राष्ट्रकवि के नाम से विख्यात रामधारी सिंह 'दिनकर' जी प्रारंभ में लोक के प्रति निष्ठावान,सामाजिक उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रीयता और देशप्रेम की अवधारणा का सृजन करने वाले जनसाधारण के प्रति समर्पित कवि थे।

मूल रूप से दिनकर जी ऊर्जस्वित युग-चारण कवि के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध है। 1940 में रेणुका के प्रकाशन के बाद हिंदी काव्य जगत में दिनकर को पूर्ण स्वीकृति मिली।गद्य और पद्य में समान रूप से समर्थ कवि दिनकर ने सर्वहारा की पीड़ा को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। हिंदी के क्रांतिदर्शी कवि कभी है हुंकार सावधानी कुरुक्षेत्र रश्मिरथी आदि उनकी ओजपूर्ण कविताएं है तो रसवंती बौद्ध गीत चिंतन प्रधान रचनाएं हैं।उनकी रचनाओं में देशव्यापी जागरण का उच्च स्वर है ।वे सिर्फ राष्ट्रकवि ही नहीं बल्कि जनसाधारण की व्यापक स्वीकृति वाले एक जनकवि भी है ।लोकतंत्र में प्रजा को जागृत करने के लिए राष्ट्रीयता बोध उनका एक प्रमुख अस्त्र है ;ना कि एकमात्र अस्त्र ।उनकी राष्ट्रीयता मैं प्रेम-बोध है ना की कट्टरता। "तुझको या तेरे नदीश गिरिवन को नमन करूं मैं मेरे प्यारे देश दामन को नमन करूं मैं किसको नमन करूं मैं भारत किसको नमन करूं मैं "

इन पंक्तियों में कवि का अंतर्द्वंद चित्रित है जहां सब कुछ वंदनीय और अभिनंदन योग्य है ।दिनकर की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है और वे अधिकांशतः तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं ।उनका शब्द चयन अत्यंत पुष्ट और भावानुकूल होता है । उनकी भाषा विचारों का पूर्णता समर्थन करती है।

हिंदी कविता में देश प्रेम और राष्ट्रीयता का प्रतिपादन हालांकि आधुनिक युग की देन है परंतु दिनकर ने अपने साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ हिंदी काव्य की राष्ट्रीय विचारधारा को अपने कविताओं में स्थान देकर राष्ट्रीयता को व्यापक के आयाम देते हैं ।कवि दिनकर ना तो बच्चन और अंचल जैसे व्यक्तिवादी हैं और न तो मुक्तिबोध जैसे प्रगतिवादी । वे अपने राह के अकेले पथिक है। कुछ लोग उन्हें गांधीवादी विचारधारा का समर्थक मानते हैं तो कुछ उन्हें सशस्त्र क्रांति के संचालक-सैनिक के रूप में देखते हैं। इस संबंध में दिनकर का प्रबंध काव्य कुरुक्षेत्र उल्लेखनीय है ।इसका आधार महाभारत की कथा और द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि है इसमें कवि ने गांधी के अहिंसा और क्षमा के सिद्धांतों को रेखांकित करते हुए लिखा है कि-

"क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दंतहीन,विषरहित,विनीत सरल हो"

हुंकार दिनकर की एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय काव्यकृति है।कुछ आलोचकों ने इसे 'वैतालिक का जागरण 'भी कहा

है ।इसमें राष्ट्रीय चेतना के प्रखर स्वर के साथ ही साथ छायावादी रोमांटिकता का भी आभास मिलता है ।यह कविता प्राचीन होते हुए भी समकालीन है और यही समकालीनता उन्हें कालजीवी कवि बनाते हैं ।उनकी हिमालय नामक कविता यह सिद्ध करती है कि पराधीन सपनेहूँ सुख नाही !और कवि की लेखनी सहसा ललकार उठती है -

"सुनूँ क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा
स्वयं युगधर्म का हुंकार हूं मैं
कठिन निर्घोष हूं भीषण अशनि का
प्रलय गांडीव की टंकार हूं मैं "
"कह दो शंकर से आज करें
वे प्रलय नृत्य फिर एक बार
सारे भारत में गूँज उठे
हर-हर बम-बम का महोच्चार।"

भारत और चीन के संबंधों को आधार बनाकर लिखी गई कविता परशुराम की प्रतीक्षा भारतीयों के प्रतिरोध को पैदा बनाते हैं आर कालांतर में दिनकर अपनी कविता हारे को हरिनाम के साथ आध्यात्मिकता की ओर भी उन्मुख होते हैं हिंदी के वरिष्ठ आलोचक 'डॉ नामवर सिंह' ने इस रचना को 'दिनकर की विनय पत्रिका' कहा है । वास्तव में देखा जाय तो दिनकर में प्रगतिवादी तत्वों की सघनता है। वे मूलतः प्रगतिवादी क्रांत-चेता,समाज-द्रष्टा कवि थे :-

"श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं ।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं ।"
"...फटेगा भूखा हृदय कठोर
चलो कवि वन फूलों की ओर।"

दिनकर जी की रचनाओं को अचूक आह्वान शक्ति और भावात्मक प्रकृति, दोनों के स्वभाव के कारण 'दहकते अंगारों पर इंद्रधनुषों की क्रीड़ा ' से उपमित किया गया है ।हिंदी साहित्य के इतिहास में दिनकर का नाम संस्कृति ,चेतना ,युद्ध और प्रेम के कवि के रूप में अमर रहेगा और उर्वशी उनकी कला वैभव और उनके शिल्प सामर्थ्य की कहानी भी कहता रहेगा।

दिनकर के काव्य में पुनरुत्थान की चेतना को अभिव्यक्ति मिलती है। यह पुनरुत्थान की चेतना युगीन प्रभाव है और उनकी कविता में शक्ति-स्रोत का काम करता है। दिनकर उदात्त भारतीय सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं ।उनकी कविताएं आज भी वैचारिक प्रतिरोध की एक व्यापक भावभूमि तैयार करती है ।उन्होंने काव्य-कला के माध्यम से हर स्तर पर शोषण, अत्याचार ,अन्याय एवं अनीति का विरोध किया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है

"छोड़ो मत अपनी आन,शीश कट जाए,
मत झुको अनय पर भले व्योम फट जाए।"

दिनकर अपने युग के देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि कवि हैं ।उनकी भाषा में ओज, भाव में क्रांति की ज्वाला तथा शैली में प्रवाह है ।दिनकर की कविता में विवेकानंद का तेज, महर्षि दयानंद की सी नीडरता ,भगत सिंह का बलिदान ,गांधीजी की निष्ठा और कबीर जी की समाज-सुधार की भावना एवं स्वच्छन्दता विद्यमान है

"तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है।
किसी न्याय के लिए, प्राण अर्पित करने जाता है।
मानवता के इस ललाट-चंदन को नमन करुँ मैं ?
किसको नमन करूं मैं भारत किसको नमन करूं मैं"

उपर्युक्त पंक्तियों में राष्ट्रकवि दिनकर ने हमारे भारत देश की विशेषताएं यथा - भारतीय संस्कृति,शांति,धर्मनिरपेक्षता, अखंडता, एकता, त्याग, सत्य,स्नेह, प्रेम, न्याय, सहयोग आदि को शाश्वत सत्य के रूप में उभारा है जो भारतीय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है।

कवि दिनकर ने हिंदी कविता को राष्ट्रीयता का स्वर ही नहीं दिया वरन् उन्होंने कलाकार के दायित्व का अपने समकालीन कवियों तथा रचनाकारों को बोध भी कराया था ।जनसाधारण की उपेक्षा करने वाले कलाकार को उन्होंने कभी वरीयता नहीं दी। उनकी दृष्टि में जनता की उपेक्षा करने वाला कवि या लेखक डिक्टेटर के सदृश ही जनता से दूर होता है और उसे चिरकाल तक स्वीकार नहीं किया जा सकता ।दिनकर की काव्य चेतना निषेध से स्वीकृति ,अकर्मण्यता से कर्मठता और स्वप्न से सत्य की ओर अग्रसर हुई थी। पहले कवि दिनकर भाव-प्रवण थे फिर विचार-प्रवण हुए; फिर आगे चलकर प्रचंड तेज के साथ युद्ध की स्वीकृति देकर क्रोधानल में आहुति की भांति जलने लगे। उसके बाद जीवन की प्रौढ़ी पर पहुँचकर उन्होंने अध्यात्म और दर्शन की ओर ध्यान लगाया। कहने का तात्पर्य यह है कि दिनकर केवल गीत लिखने वाले कवि या भाषण देने वाले व्याख्याता ही नहीं बने रहे बल्कि बलिदानी वीर पुरुष के समान कर्म और प्रेरणा को मिलाकर विचार सागर में गहरे उतरते चले गए ।परशुराम की प्रतीक्षा में कवि ने कोरी कल्पना नहीं की

वरन् भारतीय जनता के हृदय की आकुल पुकार उस कविता पंक्तियों से गूंज रही है। चीनी आक्रमण के बाद पाकिस्तान का दूसरा आक्रमण हुआ तो परशुराम की प्रतीक्षा कविता की भूमि पर हो उठी थी।

संक्षेप में दिनकर सच्चे अर्थों में नवजागरण के अग्रदूत,क्रांति के चरण, युगप्रहरी साहित्यकार थे ।राष्ट्रहित में बांसुरी छोड़कर पांचजन्य उठाने का उनमें भरपूर साहस था।उनकी रचनाओं में विराट व्यक्तित्व के बीज सहज ही खोजे जा सकते हैं ।कुरुक्षेत्र के भीष्म ,रश्मिरथी के कर्ण ,परशुराम की प्रतीक्षा के परशुराम और उर्वशी के पुरूरवा में दिनकर के व्यक्तित्व का अंश उनके यशः शरीर के साथ सदैव जीवंत रहेगा। दिनकर ने कविता की भूमि पर पहुंचकर दर्द और बेचैनी, कष्ट और यात्रा ,शोषण और दमन तथा वासना और रुधिर के उत्ताप को पहचाना था। इसी रूप में दिनकर महाकवि दिनकर और राष्ट्रकवि दिनकर बने थे ।आज उनकी ओजस्वी वाणी का स्वर मौन हो गया है ।किंतु उनकी काव्यधारा की गूंज और अनुगूँज सर्वत्र व्याप्त है ।वर्तमान राष्ट्रीय महासंकट के समय दिनकर की वाणी का वर्चस्व अपेक्षित है। उन्होंने इस महान राष्ट्र की राष्ट्रीयता और भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए जो कार्य किया वह इस देश में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।हमारा अमित विश्वास है कि युगों-युगों तक जनमानस में उनका संदेश व्याप्त रहेगा और संकट में वह हमारा पथ प्रदर्शक होगा।

दिनकर इस देश के उन दो महान कवियों में है जो नोबेल पुरस्कार विजेता हुए बिना भी पूरी दुनिया द्वारा सुने और सराहे गए। यह दोनों कवि है इकबाल और दिनकर अविकसित या अर्द्ध-विकसित एफ्रो-एशियाई देशों के कुछ ही कवि अंतरराष्ट्रीय ख्याति की दृष्टि से इतने सौभाग्यशाली हुए हैं ।

दिनकर जी बल,विक्रम और ओज के कवि थे।उनका विग्रह ही पौरूष का मूर्तिमान रूप था। उनकी कविताओं में अक्सर एक धमाके का गर्जमान स्वर रहता था और वे अपने भाषण में समुद्र की तरह दहाड़ देते सचमुच में अदिति पुत्र थे। समय कीधड़कन के साथ चलना उन्हें बहुत पसंद था। इसीलिए वे समय और समाज तथा धरती और जनता से जुड़े रहना चाहते थे ।यही कारण था कि उन्हें इस विचारधारा के समानधर्मा कवि सहज रूप से आकृष्ट कर लेते थे। पाब्लो नेरुदा और एब्तुशेंको जैसे कवि इसके उदाहरण है। दिनकर जी की कृतियाँऔर उनकी प्रतिभा के संबंध में कुछ भी विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। न केवल हिंदी जगत प्रत्युत भारतीय वाङ्गमय उनकी विशेषता से पूर्णतःपरिचित है ।

दिनकर भले ही अस्त हो गए हो,परंतु उसकी दीप्ति ज्योति शेष है जो निश्चय ही दीर्घजीवी है।

"समर शेष है,जनगंगा को खुलकर लहराने दो,
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो।
पथरीली,ऊंची जमीन है?तो उसको तोड़ेंगे।
समतल पीटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे।
समर शेष है, चलो ज्योतियों के बरसाते तीर,
खंड खंड हो गिरे विषमता की काली जंजीर।
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. दिनकर : बहुआयामी कवि- प्रभाकर श्रोत्रिय
2. राष्ट्रकवि दिनकर : मत झुको अनय पर-चन्द्रेश्वर
3. विद्रोह की वाणी : राजीव फूकन
4. दिनकर-साहित्य में राष्ट्रीयता और देश-प्रेम : सुरेंद्र दुबे
5. क्रांत कवि दिनकर की काव्य-चेतना : डॉ राहुल
6. ऐसे थे दिनकर : साँवलाराम नामा
7. स्मृति-तर्पण : डॉ कुमार विमल
8. साहित्य के दीप्तिमान नक्षत्र- कमलापति त्रिपाठी
9. राष्ट्रीय वीणा का ओजस्वी स्वर : डॉ विजयेंद्र स्नातक
10. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के संवाहक दिनकर : अभिषेक शर्मा 'नीलकंठ'

दिनकर की उर्वशी : (अप्सराओं और वेश्याओ का तुलनात्मक अध्ययन)

* मनीषा

* पीएच.डी हिंदी (शोधार्थी), दिल्ली विश्वविद्यालय

रामधारी सिंह दिनकर' जब ''उर्वशी'' की रचना कर रहे थे, तब भारत आजादी पाकर नवनिर्माण के जरिए स्वतंत्रता के आर्थिक, जनतांत्रिक और सामाजिक आधार की रचना कर रहा था। वैज्ञानिक-तकनीकी विकास करने के लिए हाथ-पैर मार रहा था । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की दुनिया वैज्ञानिक-तकनीकी विकास के अभियान से होते हुए विश्व शांति और मनुष्यता को सुदृढ़ बनाने में लगी हुई थी और इन सब के लिए साम्राज्यवाद को पराजित करने के लिए जद्दोजहद चल रहा था । उस समय मृत्यु-लोक से स्वर्ग लोक तक की यात्रा कर, दिनकर जी ''उर्वशी'' नामक महाकाव्य की रचना कर रहे थे ।

'उर्वशी' मानवीय संवेग की अभिव्यक्ति का काव्य है । 'उर्वशी' की कथा ऐतिहासिक नहीं पौराणिक है । वह एक मिथक है । इसे ऐतिहासिक भी कहा जा सकता है किंतु भारतीय काव्य के इतिहास में 'उर्वशी'-पुरुरवा की प्रेम कथा है। जिस प्रकार हर वस्तु-व्यक्ति का इतिहास होता है, उसी तरह मिथक का भी अपना इतिहास होता है । मिथक पुरा-कल्पना है, इसे यथार्थ का बदला हुआ रूप भी कहा जा सकता है । जैसा कि मैंने पहले भी कहा- 'उर्वशी' मानवीय संवेग का अभिव्यक्ति का काव्य है इसलिए उसमें मानवीय संवेदनाएं ही अनुपस्थित है। 'उर्वशी' नामक काव्य अनेक कसौटियों पर रखकर परखा गया, जो तत्कालीन एवं वर्तमान परिस्थितियों की समानता व अंतर को समझने में सहायक भी हुआ है।

इस काव्य में दो-लोकों का जिक्र है, जो भू-लोक से स्वर्ग लोक तक की यात्रा कराता है। विज्ञान की प्रगति के कारण व्यक्ति चाँद तक तो पहुंच गया किंतु यह आज भी रहस्यमयी है, मृत्यु के बाद मिलने वाला स्वर्ग-लोक, अथवा नरक-लोक कैसा दिखता है? क्या वास्तव में ऐसा कुछ होता भी है अथवा नहीं ??... किंतु अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका कि स्वर्ग लोक कैसा दिखता है। ना कोई अंतरिक्ष वहाँ की यात्रा कर, परिणाम प्राप्त कर पाया है। क्या वहाँ वास्तव में अप्सराएँ होती हैं?

क्या वहाँ सभी देवगण उपस्थित होते हैं? क्या अप्सराएँ वास्तव में बहुत खूबसूरत होती हैं? इस खूबसूरती की परिभाषा क्या होती है, जो स्वर्ग में विचरण करने वाली स्त्रियों को अप्सरा कहा जाता है, और भू-लोक में रहने वाली किसी सुंदर स्त्री की तुलना भी अप्सरा से कर दी जाती है। 'दिनकर' जी की इस रचना को काम चिंतन का विषय बना कर भी देखा गया है किंतु स्वर्ग-लोक और भू-लोक में रहने वाली स्त्री दोनों जगह समान है

जहाँ स्वर्ग लोक में अप्सराओं का वास है, वहीं पृथ्वी पर वेश्या को उसी संदर्भ में रखा जा सकता है किंतु वेश्या शब्द आते ही मस्तिष्क में एक ऐसी छवि बनती है जिससे समाज घिन्न करता है। हिंदी साहित्य की बात की जाए या समाज की वास्तविकता देख ली जाए, समानताएँ बहुत मिल जाएँगी। लेकिन, जैसा कि हम सभी जानते हैं, हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से लेकर आधुनिक-काल तक स्त्री को कभी गणिकाओं के रूप में पढ़ा गया, तो कभी कनीज के रूप में जाना गया। कभी साफ-तौर पर घनानंद की प्रेमिका सुजान नामक वेश्या कह दिया गया तो कभी स्त्री को ताड़न का अधिकारी बताया गया। मनुष्य का तो स्वभाव ही विरला होता है, भू-लोक की बातें तो चलो फिर जैसे तैसे सुन ली जाती है किंतु बड़ा अचंभा होता है, जब किसी पौराणिक-ग्रंथ, पौराणिक -तथ्यों पर आधारित नाटक अथवा किसी कल्पित

साहित्यिक रचना में देखने को मिलता है, कि देवगण के लिए जहाँ कल्पनाओं से भी सुंदर स्वर्ग गढ़ा गया है। वहीं उनके मनोरंजन के लिए किसी स्त्री का नृत्य करके देवों का मन-बहलाना, सुंदरता के लिए अनेक आभूषणों को स्त्री द्वारा ग्रहण कराते हुए दिखाना, संभोग करना तथा एक वस्तु बने रहना.... क्या देवताओं के लिए भी स्त्रियों की दो छवियाँ है। एक, जिन्हें वह देवी संबोधित करते हैं और शीश झुकाते हैं, अथवा दूसरी, जिनसे हुक्म देकर मनोरंजन पेश कराया जाता है। क्या भू-लोक का मनुष्य इसी कारण सुरा-पान व संभोग कर, स्त्री को विलासिता की वस्तु समझता है क्योंकि उसकी कल्पनाओं में उसके आराध्य ही ऐसे हैं। बड़ी विचित्र बात है, स्त्री स्वर्ग में रहकर भी वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर होती है, बस नाम बदल दिया जाता है। स्वर्ग में वही स्त्री अप्सरा कहलाती है और पृथ्वी पर वेश्या। 'दिनकर' की रचना और 'उर्वशी' स्वर्ग-लोक की अप्सराओं में से एक है, जो सखियों संग पृथ्वी पर विचरण करने आती है। कुछ असुरों द्वारा 'उर्वशी' और उसकी सखियों को सताने पर भू-लोक का राजा पुरुरवा द्वारा उनको बचाया जाता है, जिस कारण 'उर्वशी' पुरुरवा को दिल दे बैठती है। वहीँ सखियों द्वारा 'उर्वशी' को सूचित किया जाता है....

सहजन्ये! हम परियों का इतना भी रोना क्या?
किसी एक नर के निमित्त इतना धीरज खोना क्या?[1]

प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीडा है
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है।
जन्मी हम किसलिए? मोद सबके मन में भरने को,
किसी एक को नहीं मुग्ध जीवन अर्पित करने को।[2]

हम तो हैं अप्सरा, पवन में मुक्त विहरने वाली
गीत- नाद सौरभ- सुवास से सब को भरने वाली।
अपना है आवास, न जाने कितनों की चाहत में
कैसे हम बंध रहे किसी भी नर की दो बाहों में।।[3]

परियों/ अप्सराओं के लिए तो प्रेम क्रीडा है एवं विलास मनोविनोद। परियों का काम तो केवल देवो का मनोरंजन है, उनका वास तो कितनों की चाहत में है। एक पुरुष की बाहों में बँधकर कर रहना उन्हें अभीष्ट नहीं।

वहीँ वेश्या कही जाने वाली स्त्री के लिए भी अवधारणाएँ समान हैँ। उसके लिए किसी एक के साथ बंधा न रहकर, अनेक के लिए स्वयं को मनोरंजन के रूप पेश करना होता है। वह किसी के प्रति समर्पित नहीं हो पाती, और एक समय के बाद समर्पण भाव को ही त्याग देती है। पुरुष को तृप्त करना उसके जीवन का एक अहम हिस्सा बन जाता है। जिसके लिए उसे आर्थिक सबलता मिलती है। जिस प्रकार स्वर्ग में शायद अप्सराओं को प्रशंसा, सुख और वैभव की प्राप्ति होती है, पृथ्वी पर जीने वाली वेश्या भी आर्थिक मजबूती से स्वयं को जीवित व प्रसन्न रखती है। दोनों में क्या अंतर है?... बस इतना ही, कि एक देवों का मनोरंजन करती है, स्वर्ग में विचरण करती है और दूसरी मनुष्य को तृप्त करती है भू-लोक जन्मी है।

स्त्री, पत्नी के रूप में हो, प्रेमिका हो, वेश्या हो, अप्सरा हो, कभी राजनैतिक स्तर पर तो कभी आर्थिक स्तर पर पुरुष द्वारा एवं उसकी आवश्यकतानुरूप उपयोग की जाती रही है। चाहे 'प्रसाद' की 'ध्रुवस्वामिनी' हो, या 'दिनकर' की 'उर्वशी'।

राजा पुरुरवा द्वारा 'उर्वशी' को स्वीकार करना, किंतु अपनी पहली पत्नी को विस्मृत कर देना, इतिहास में यही स्त्री की एक नियति बनाकर रखी गई है। किंतु आदर्शों का बराबर ख्याल रख, स्त्री से ऐसे वचनों की कल्पनाएँ भी की जाती रही, जिनसे स्त्री, पुरुष को स्वयं के जीवन का सर्वस्व मानकर ही चले। पुरुरवा की पत्नी रानी औशनरी का कथन उक्त तथ्यों को प्रमाणित करते हैं-

तब भी मस्त अनुकूल हो,
मुझको मिले, जो शूल हो
प्रियतम जहाँ हो बिछे
सर्वत्र पथ में फूल हो।[4]

धरती की महत्ता कवि ने मनुष्य के पुरुषार्थ को व्यक्त करके दिखाइ है। मनुष्य का पुरुषार्थ है, जो स्वर्ग की कई अप्सराओं को असुरों से बचा लेता है और स्वर्ग तक अपना परचम लहरा सकता है। अप्सराओं के साथ गगन विहार कर सकता है, किंतु स्त्री अपने मूल में वही अस्तित्व लिए हुए है, जो उसे पराधीन बनाकर रखता हो, चाहे वह स्त्री स्वर्ग की हो या नर्क की।

हालाँकि स्वयं 'दिनकर' जी कहते हैं- "उद्देश्य, संदेश या शिक्षा उर्वशी काव्य से भी निकाली जा सकती है किंतु मैंने किसी भी ध्येय को ध्यान में रखकर इस काव्य की रचना नहीं की है।"

यह रचना पूर्ण रूप से न तो सत्य पर आधारित है, न पूर्ण काल्पनिक है। कुछ घटनाएं पौराणिक है, कुछ तथ्य वेदों से लिए गए हैं। 'उर्वशी' पुरुरवा के साथ विवाह कर इस शर्त पर रहती है, कि वह दिन में सिर्फ तीन बार ही उसका आलिंगन कर सकता है। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे वह हाथ नहीं लगा सकता तथा नग्न अवस्था में 'उर्वशी' के समक्ष नहीं आ सकता। 'उर्वशी' के अनुसार- अप्सराओं की व्यवहार की यही सरणी है।[6] यहाँ तीन बार आलिंगन करने की शर्त, ऋग्वेद के अनुसार है।

पुरुरवा द्वारा शर्त मानने पर 'उर्वशी' पुरुरवा के साथ रहने लगती है तथा उसे गर्भ भी रहता है किंतु गन्धर्वो द्वारा 'उर्वशी' को वापस स्वर्ग लोक लाने की इच्छा से गंधर्व 'उर्वशी' के अति दो प्रिय मेघ-शावकों का अपहरण कर लेते हैं, 'उर्वशी' द्वारा पुकार मचाने पर पुरुरवा नंगे बदन ही उन शावकों की रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। उसी समय गंधर्व प्रकाश कर देते हैं, और पुरुरवा को नग्न देखकर प्रतिज्ञा अनुसार 'उर्वशी' उसे छोड़ कर चली जाती है। किंतु जाते समय तक 'उर्वशी' एक पुत्र की माता बन चुकी थी परंतु उसे यह सब छोड़कर जाना पड़ता है।

हाय पुत्र! तू क्यों आया था उसके वन्ध उदर में,
अभिशप्ता जो नहीं प्यार, माँ का भी दे सकती है?[7]

स्त्री के जीवन में प्रेम-संबंध कितना भी गहरा, अटूट क्यों ना हो, चाहे वह भू-लोक वासिनी हो या स्वर्ग-लोक। अप्सरा हो या साधारण। मातृत्व ही उसके लिए सबसे बड़ा समर्पण होता है।

जीवन के अनेक पड़ाव में कई बार स्त्री स्वयं की मनोदशा पर टूटती भी है-

आजीवन वे साथ रहेंगे? तो अब क्या करना है?
जीते जी यह मरण झेलने से अच्छा मरना है।[8]

औशनरी के होते हुए राजा पुरुरवा सुंदरता पर मोहित हो अप्सरा 'उर्वशी' का वरण करते हैं। जिसके कारण रानी औशनरी अपनी सुंदरता, अपने रूप को तुच्छ समझती है, हीन भावना का उदय मनुष्य के भीतर इसी प्रकार होता है। किंतु स्त्री की मनोदशा अत्यंत मार्मिक रही है, चाहे कल्पित पात्रों में हो, फिल्मों में हो, ग्रंथों में हो या जीवन में हो। कभी स्त्री की सुंदरता पर मुग्ध, उसे प्रियतम बना लिया गया तो कभी पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया। कहीं मनोरंजन के लिए उसके रूप की प्रशंसा की गई तो कहीं मन भर जाने पर उसी स्त्री का तिरस्कार कर, उसे वेश्या और मन बहलाने वाली वस्तु कह दिया गया। जिनसे जीवन का मनोरंजन तो संभव है, परंतु उनके साथ जीवन संभव नहीं है। स्वर्गलोक से तो मैं अभी अनभिज्ञ हूँ, किंतु इस लोक की वास्तविकता किसी से छिपी नहीं है। आखिर, सुंदरता की कसौटी क्या है ? यदि इस विषय में नारीवादी विचारधारा को सम्मिलित कर दिया जाए तो उक्त विषय समानता पर आकर रुक जाएगा। तो क्या यही सुंदरता की कसौटी, स्त्री को भी पुरुष के प्रति अपनानी चाहिए ? चाहे वह फिर साधारण जीवन जीने वाली साधारण स्त्री ही क्यों न हो,.... किंतु इस समानता से क्या लाभ होगा ? क्या यह समानता वास्तव में स्त्री को सम्मान दिला पायेगी ?

भारतीय संस्कृति में स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है, तो कथनी और करनी में अंतर क्यों ??? प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका सिमोन-द-बोउवार प्रसिद्ध कथन है- "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है"।

तो क्या यह कहना गलत होगा, कि पुरुष भी पैदा नहीं होते, बनाए जाते हैं। पैदा तो बालक होता है जो स्त्री होता है ना पुरुष। तो क्यों ना व्यक्ति के जीवन में मूल्यों को रखा जाए, जिससे स्त्री और पुरुष साथ मिलकर सम्मानित जीवन का निर्वाह कर सकें तथा प्रकृति और पुरुष की परिभाषा को दिशा दें। न किसी स्वर्ग पर स्त्री को अप्सरा की संज्ञा दी जाए, न किसी को पृथ्वी पर कोई गणिका, कनीज़ अथवा वेश्या बनना पड़े।

सन्दर्भ

1. उर्वशी: रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम अंक भाग तीन
2. उर्वशी: रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम अंक भाग तीन
3. उर्वशी: रामधारी सिंह दिनकर, प्रथम अंक भाग तीन
4. दिनकर की उर्वशी: राय राजनारायण, पृष्ठ संख्या - 25
5. रामधारी सिंह दिनकर, व्यक्तित्व और कृतित्व: खगेंद्र ठाकुर, पृष्ठ संख्या -29
6. दिनकर की उर्वशी: राय राजनारायण, पृष्ठ संख्या- 3
7. उर्वशी: रामधारी सिंह दिनकर
8. उर्वशी का कथानक : दिनकर की उर्वशी, राय राजनारायण पृष्ठ संख्या -39

दिनकर-साहित्य में राष्ट्रीय व प्रगतिवादी चेतना

* डॉ. सुनील कुमार

* सहायक प्राध्यापक, हरि सिंह महाविद्यालय, हवेली खड़गपुर, मुंगेर (बिहार)

भारतीय संस्कृति के अमर गायक राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का ओजस्वी व्यक्तित्व उनके कृतित्व में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस व्यक्तित्व का निर्माण विपदाओं, बाधाओं और विरोधी- तत्वों से लड़ते हुए पर-दर-पर जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हुए हुआ था। ठीक वैसे ही जैसे मेघाच्छन्न आकाश में सूर्य कुछ समय के लिए छिप जाते हैं; अंततः उनकी किरणें बादलों को भेदकर अपना मार्ग प्रशस्त कर लेती हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्तियां हैं-

"जितने कष्ट कंटकों में है, जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव-गंध उन्हें उतना ही यत्र - तत्र सर्वत्र मिला"

कवि दिनकर भी संघर्ष पथ पर चलते हुए कभी नहीं घबराए। जिनके लिए पहले से ही आगे बढ़ने के लिए फूलों से सुसज्जित राजमार्ग तैयार है, उन्हें आगे बढ़ने से भला कौन रोक सकता है? वे आगे न भी बढ़े, तो भी पश्चात्ताप का कोई कारण नहीं..... सोने की थाली में भोजन करेंगे, चांदी की सुराही से पानी पिएंगे, मखमली सेज पर आनंद की नींद में सोएंगे।। भला इस प्रकार के जीवन में कैसा आनंद? सच्चा आनंद तो काँटों से भरे पथ को प्रशस्त कर आगे बढ़ते हुए मंजिल तक पहुंचने वालों को मिलती है। कवि दिनकर ने भी इसी तरह अपना मार्ग तैयार किया था। एक ओर बचपन में ही माथे से पिता का साया हट गया था, दूसरे होश सँभालते ही उन्होंने गुलामी की जंजीरों में बंधी भारत माता की कराह सुनी थी। उन दिनों भारत माता को बेड़ियों से मुक्त करने के लिए आजादी के दीवानों के मुख से आंदोलन का स्वर चारों तरफ से आ रहा था। देश की दयनीय दशा से मर्माहत कवि दिनकर के लिए कोई कारण ही नहीं था कि वे लेखनी के माध्यम से स्वातंत्र्य-समर में न कूदे। यह सच है कि परिवार की जिम्मेदारी के कारण उन्होंने अंग्रेजी सरकार की नौकरी कर ली थी, युद्ध- प्रचार- विभाग से भी जुड़ गए थे। मगर वे अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन सत्तासीन अंग्रेजों के विरुद्ध आग उगलते ही रहे।।यही कारण है कि उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का उद्दाम स्वर सुनाई पड़ता है। यह स्वर कभी जन्म-भूमि के प्रति अगाध प्रेम के रूप में, तो कभी भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के रूप में सुनी जा सकता है। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम था। इसके लिए उन्होंने भारतीय संसद में पुरजोर बहस भी की थी। वे न्यायोचित विषयों को लेकर आवाज बुलंद करते ही रहते थे और उस पर अडिग रहते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारत की छवि को पूरे विश्व में निखारने का ही प्रयत्न किया।

दिनकर साहित्य में राष्ट्रीय-चेतना को जानने के लिए सबसे पहले 'राष्ट्रीयता' शब्द को ही समझना आवश्यक है। यह शब्द जाति, धर्म, संप्रदाय, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर क्रमशः एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करने वाले समस्त जनसमूहों के रीति-रिवाजों का सामूहिक व संश्लिष्ट रूप है। ऊपर-ऊपर वे एक दूसरे से भले ही अलग-अलग दिखते हैं, मगर सब का मूल स्रोत एक ही है। वह अपनी संस्कृति और अतीत के सुनहरे पन्नों के प्रति गर्व अभिव्यक्त करता है।[1] कवि दिनकर ने इसी राष्ट्रीयता के स्वर का महिमा-मंडन किया है, जिसमें भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व भी मौजूद हैं तथा जहां संवेदना और विचार का सुंदर समन्वय हुआ है। निश्चय ही वे अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूक थे। परिणामतः उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा प्राचीन मूल्यों का नए जीवन-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक

ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है तो दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उसे नवीन जीवन-मूल्यों से जोड़ना चाहा है।

कवि दिनकर के लिए भारतवर्ष सिर्फ एक भू-खंड नहीं है; यह आत्म-सौंदर्य से मंडित भाव-खंड है। यह भारत के करोड़ों लोगों के मनों में निवास करता है। यह देश सभ्यता, संस्कृति, अध्यात्म और श्रद्धा-प्रेम का केंद्र है। भारत एक स्वप्न है- वैचारिक उच्चता, आध्यात्मिक गरिमा एवं उर्ध्वमुखी संस्कृति की। स्वर्ग की कल्पना की जो विचारधारा है, उसका मूर्त रूप भारत-भूमि ही है। भारत एक प्रकाश है, जिससे मानवता प्रकाशित होती है। भारतीय संस्कृति विश्व को मानवता का दर्शन कराती है। इस संस्कृति में भोग नहीं त्याग ही महत्वपूर्ण है। यह वही संस्कृति है, जिसकी छत्रच्छाया में 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' की भावना लिए हुए तत्कालीन चिंतक, ऋषिगण समस्त पृथ्वी और सभी जीवों के उत्थान के लिए श्रमरत, कर्मरत रहते थे। कवि दिनकर ने 'हिमालय का संदेश' कविता में भारत की तुलना जलज से की है। जैसे कमल पर जल का दाग नहीं लगता, वैसे ही भारतीय संस्कृति के महान गुणों में दोष ढूंढना व्यर्थ है। यह संस्कृति अंधकार से प्रकाश की ओर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। कवि के अनुसार भारतीय संस्कृति जीवन में संतुलन का पर्याय है; भोग के साथ योग, राग के साथ विराग, श्रम के साथ विश्राम को प्रश्रय देती है। यहां मन पर विजय पाने और आत्मोदय की भावना पर ही विशेष बल दिया गया है। यह संस्कृति हमें राग-द्वेष से मुक्त रहकर मानवीय धरातल पर रहने की शिक्षा देती है। कवि ने उक्त कविता में स्पष्ट रूप से लिखा है-

"जहां त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहां भोग निष्काम
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम"

सचमुच भारतीय संस्कृति में वह शक्ति है, जो 'जग-जीवन की दाह' दूर करने में सक्षम है। यह संस्कृति अतिशय लोभ, मोह से मुक्त रहने की शिक्षा देती है। जहां स्नेह, सौहार्द्र के साथ जीने की बात होगी वहां जलन, तपन नहीं शांति ही शांति होगी। यही बात कवि दिनकर 'अवकाशवाली सभ्यता' कविता में भी कहते हैं - जब सारी दुनिया आग में झुलसने लगेगी तब शीतलता की छाया भारतवर्ष से ही प्राप्त होगी। यह बुद्ध की धरती अपनी ज्ञान की ज्योति से पूरी दुनिया को प्रकाशित करती रहेगी। जब भौतिक सुखों के पीछे अन्य देश परेशान हो उठेंगे, तब वहां ज्ञान की रोशनी भारत से ही पहुंचेगी। उन विषम परिस्थितियों में भी भारत, भारत ही रहेगा -

"जो ज्योति दुनिया में बुझी जा रही है
वह भारत के दाहिने करतल पर जलेगी
यंत्रों से थकी धरती उस रोशनी ने चलेगी
जब दुनिया झुलसने लगेगी
शीतलता की धारा यहीं से जाएगी
रेगिस्तान में दौड़ती हुई संततियां थकने वाली हैं
वे फिर पीपल की छाया में लौट आएगी"

कवि दिनकर परंपरा के अंधभक्त भी नहीं थे। वे बाहरी संस्कृति के अच्छे गुणों को अपनाने की बात करते थे। 'परंपरा' कविता में उन्होंने स्वीकार किया है –

"कलमें लगाना जानते हो
तो जरूर लगाओ
मगर ऐसे कि फलों में
अपनी मिट्टी का स्वाद रहे"

उनके लिए अपनी मिट्टी की सोंधी गंध बहुत प्यारी थी। किंतु वे उन जीर्ण-शीर्ण परंपराओं को नष्ट होते हुए भी देखना चाहते थे, जिनके कारण हम भारतवासी विकास की दौड़ में पीछे छूटे जा रहे हैं। इस तरह कवि दिनकर भारतीय संस्कृति की आत्मा को समझे बिना भारत का नाम लेना व्यर्थ बताते हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति का गुणगान उनकी राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक है। इस राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए वे शक्ति-संवर्धन की भी बात करते हैं। आजादी के बाद देश पर अनेक बार विपदा आई। पड़ोसियों से युद्ध करना पड़ा। इस परिस्थिति में कवि को शांति और सौहार्द्र की बातें कतई पसंद नहीं आई। जब दुश्मन छाती पर चढ़ बैठा हो, उस समय शांति की बातें न्यायोचित नहीं, इसलिए 'हिमालय' नामक कविता में वे युधिष्ठिर को स्वर्ग जाने देने की बात करते हैं –

"रे रोक युधिष्ठिर को ना यहां
जाने दो उनको स्वर्ग धीर
फिरा दो हमें गांडीव-गदा
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर"

पर राजनीति यह सब होने नहीं दे रही थी। आजादी के बाद भी उच्च पदों पर बैठे लोग जाति, धर्म और गोत्र पहचान रहे थे। ऐसे राजनेताओं पर करारा व्यंग्य करते हुए कवि दिनकर ने लिखा है –

"देखने में देवता-सदृश्य लगता है

बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो
समझो उसी ने हमें मारा है"[2]

कवि दिनकर का हिंदी-प्रेम जग जाहिर है। सर्वविदित है कि हिंदी देश की आजादी से पूर्व भी बोलचाल की और संपर्क की भाषा रही है। संविधान में इसे राजभाषा का स्थान देकर राष्ट्रीयता की भावना को ही ऊपर उठाया गया है। किंतु राजभाषा के विकास के लिए नीति-नियम बनाए जाने के बावजूद अपने ही देश में हिंदी की उपेक्षा से कवि दिनकर काफी मर्माहत थे। इसके लिए वे केंद्र सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर बैठे नेताओं को जिम्मेदार ठहराते थे। कवि दिनकर अन्य भाषाओं-बोलियों का अपमान भी नहीं चाहते थे किंतु आजाद भारत में हिंदी का इस प्रकार अपमान उन्हें बर्दाश्त नहीं हुआ। इसके लिए उन्होंने प्रधानमंत्री को भी खरी-खोटी सुना दी थी। 20 जून 1962 को उन्होंने राज्यसभा में जो वक्तव्य दिया था, वह आज भी गुंजायमान है। उन्होंने कहा था – *"देश में जब भी हिंदी को लेकर कोई बात होती है तो देश के नेतागण ही नहीं, बल्कि कथित बुद्धिजीवी भी हिंदी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरंभ किसने किया है। लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा स्वयं प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं 13 भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा। किंतु हिंदी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि आपने हिंदी को राजभाषा इसलिए बनाया था कि 16 करोड़ हिंदी-भाषियों को प्रतिदिन अपशब्द सुनाएं? क्या आपको पता भी है इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा? मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री से कहना चाहता हूं कि हिंदी की निंदा करना बंद कीजिए। हिंदी की निंदा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहुंचती है"*[3] दिनकर के मुख से इस कटु-सत्य को सुनकर सभा सन्न रह गई थी। प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था।

भाषा भी देश की अस्मिता का वाहक और सांस्कृतिक धरोहर है। हिंदुस्तान में हिंदी का सम्मान नहीं होगा तो कहां होगा। दिनकर जी का गद्य हो या पद्य - दोनों के द्वारा उन्होंने इसी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा की है। इस रूप में भी वे राष्ट्रचेत्ता, संस्कृति के गायक, जन-चिंतक और संघर्ष के कवि हैं। उनकी उपलब्धियों के कारण ही आने वाले दिनों में बड़े-बड़े साहित्यकारों और चिंतकों ने उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की।

एक जनचेत्ता के रूप में ही कवि दिनकर ने देश के मजदूरों और किसानों के लिए जो बातें लिखी हैं, उसमें प्रगतिवादी विचारधारा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यह विचारधारा मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भाव बोध को लेकर ही निर्मित हुई थी। इस विचारधारा के आगमन के मूल कारणों में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के अतिरिक्त समाज में उभरता हुआ जन-संकट भी महत्वपूर्ण था। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों और संकटों के कारण युवकों का हृदय असंतोष से भर गया था। इस सामाजिक असमानता के पीछे पूंजीवाद और नये तरीके की सामंती प्रवृत्ति ही मुख्य थी। सर्वहारा वर्ग के लोग अपने हक़ की लड़ाई लड़ रहे थे और शासन-सत्ता में भी अपनी भागीदारी चाहते थे; जिससे जनता भयावह गरीबी, अशिक्षा, असुविधा, अपमान आदि से लड़ सके। सर्वहारा का संघर्ष जन-मंगलकारी समाज की स्थापना के लिए था। प्रगतिवादी विचारधारा का उद्देश्य ही था कि सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण हो, जिससे शोषण पर आधारित सड़ी गली विसंगतियों और शक्तियों का पर्दाफाश हो।[4] जनता तक पहुंचना, जनता के जीवन की ही बात कहना इसका मुख्य लक्ष्य था। इसी चेतना से प्रभावित होकर कवि दिनकर जन-संघर्ष के साथी बन गए थे और पाखंडी राजनेताओं के झांसे में आए बिना कविता के माध्यम से जनता की आवाज बुलंद कर रहे थे। ***'सिंहासन खाली करो, कि जनता आती है'*** – कवि का यह कथन उन दिनों जन- जन का कंठाहार बन गया था।

प्रसिद्ध रचना 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शांति के प्रसंग में कवि ने शांति हेतु संघर्ष से बचने का समर्थन नहीं किया है। वे मानते हैं कि युद्ध एक तूफान है, जो भीषण विनाश करता है। पर जब तक समाज में शोषण, दमन, अन्याय अत्याचार मौजूद है, तब तक संघर्ष अनिवार्य है। इसी भाव से अनुप्राणित होकर उन्होंने लिखा था –

"शांति नहीं तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो
नहीं किसी को बहुत अधिक हो
नहीं किसी को कम हो
जब तक मनुज मनुज का यह
सुख भाग नहीं सम होगा

शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा"[5]

उनका विश्वास था कि संघर्ष से ही दुखी, पीड़ित-जन अपना हिस्सा हासिल कर सकते हैं। भाग्य के भरोसे रहकर नहीं। वर्तमान जीवन की विपदाओं, कष्टों, अभावों का कारण विगत जीवन के कर्मों को मानकर और हाथ पर खींची गई लकीर मानकर हाथ पर हाथ रखकर बैठना वे उचित नहीं समझते थे। वे पुरुषार्थ के बल पर सब कुछ प्राप्त करने की बात करते हैं और समाज में रहकर संघर्ष, कर्म-कौशल, परिश्रम के बल पर समस्याओं के समाधान में विश्वास करते हैं। इसी विश्वास से ओतप्रोत कवि ने लिखा है – 'मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।' अपने हक की लड़ाई के क्रम में वे दुश्मनों से लोहा लेना जायज़ बताते हैं तथा अधिकार खोकर बैठे रहने वालों को-- त्याग-तप से काम लेने वालों को पाप का भागीदार बताते हैं –

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू,
त्याग तप से काम ले - यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है"[6]

कवि दिनकर समय की मांग के अनुरूप साहित्य-रचना में विश्वास करते थे। जिन दिनों देश के लोगों की कायरता दूर भगाने के लिए ओजपूर्ण वाणी और अतीत के गौरव-गान की आवश्यकता थी, उन दिनों उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' जैसे काव्यों की रचना की। किंतु देश की आजादी के बाद भी भूखे-नंगे लोगों की लंबी कतार देखकर वे सिहर उठे थे; सरकार और पूंजीपति वर्ग के प्रति उनकी वाणी प्रखर हो उठी थी। भूखे नंगे बालकों को ठिठुरते देखकर वे व्याकुल हो उठते थे। इसी व्याकुलता में उन्होंने लिखा है –

"श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल-फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार, देता तब मुझको आमंत्रण"[7]

स्पष्ट है कि कवि दिनकर अपनी रचनाओं द्वारा एक ओर भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष से पाठकों को रूबरू कराने के साथ राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना पर भी गंभीर विचार प्रस्तुत करते रहे तो दूसरी ओर उनकी लेखनी प्रगतिशील चेतना की ओर भी चल पड़ी और वे अपने ही समय में कई ऐसे राजनेताओं की आंखों की किरकिरी बन गए जो शायद भारतवर्ष में पूंजीवाद की जड़ें मजबूत बनाए रखना चाहते थे। उन्होंने पद या सम्मान के लोभ में अपनी मानवतावादी धारणाओं से कभी समझौता नहीं किया। किंतु राष्ट्र की चिंता उन्हें हमेशा परेशान करती रही। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। देश-विदेश में करोड़ों पाठकों के हृदय में उनकी छवि आज भी विद्यमान है। उनकी रचनाओं में मौजूद राष्ट्रीय चेतना का स्वर वर्तमान भारत के लिए भी प्रासंगिक हैं। भारतीय संस्कृति के अनन्य गायक और जन-मन के कवि दिनकर का अस्त होना प्रकृति का शाश्वत नियम हो सकता है, किंतु वे आज भी हिंदी-साहित्याकाश में नक्षत्र की भांति चमक रहे हैं। साहित्य के रूप में उनकी ज्योति बरकरार है और यह ज्योति नई पीढ़ी को अनवरत् मार्ग दिखाती रहेगी।

सन्दर्भ

1. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संपादक- डा. नगेन्द्र, पृष्ठ- 619
2. गूगल प्लेटफार्म 'विकीपीडिया से साभार, रामधारी सिंह 'दिनकर'
3. वही, https://hi.m.wikipedia.org
4. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सं.- डा.नगेन्द्र, पृ. 621
5. 'कविता कोश', समर निंद्य है -2, रामधारी सिंह 'दिनकर'
6. 'उर्वशी : एक मूल्यांकन', डा.कृष्णदेव शर्मा, पृष्ठ – 19
7. https://www.amarujala.com-kavya से